सप्रेम समर्पित

उसे, जिसके दिमाग की
यह उपज है।

आपकी बात

समझ नहीं पड़ता, क्यों बहुत लोग अपनी बातें कहने को इतने उतावले रहते हैं। अभी हाल ही मुझे दो लेखकों की पाण्डुलिपियों के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ, और पुस्तकों के समाप्त हो लेने के पहले ही, देखा, दोनों महाशयों ने अपनी बातें कह रखी हैं। अच्छा ही किया है। बातें उनकी अपनी हैं उन्हें सैकड़े सौ बार कहने का अधिकार है। पर दूसरों से अपनी बातें कह देना कम-से-कम मैं बुद्धिमानी भी नहीं समझता, फिर खतरा भी कम नहीं। अस्तु, मैं आपकी बातें कहने चल पड़ा हूँ। पर आपकी बात कहने का मेरा हक ही क्या है? शायद इतिहास और विज्ञान यह बात बता सकेंगे।

आप यह पुस्तक, जो आपके सामने है, पढ़ भी सकते हैं और नहीं भी पढ़ सकते, यह हुई आपकी पहली बात और इस बात के कहने में मेरी किसी खास बुद्धिमत्ता का भी परिचय नहीं मिलता, क्योंकि बात काफी से अधिक सीधी है। और जहाँतक मैं समझ पा रहा हूँ, अगर आपमें से कुछ लोग इसे पढ़ जाने की अपने पर मेहरबानी भी करेंगे तो यह अपनी बात (जो बहुत कुछ भूमिका के बतौर लिखी जा रही है) पढ़ने की जरूरत भी नहीं समझेंगे और शायद वक्त भी नहीं पायँगे।

फिर भी मैंने ऐसा मान लिया कि कोई इसे पढ़ रहा है। यद्यपि अगर, कोई इसे नहीं पढ़ेगा ऐसा विश्वास मुझे हो जाता तो रक्षा पाता, बहुत-सी मेहनत से। लेकिन कुछ लोग जब सुनने पर तुले ही बैठे हैं तो कहना भी जरूरी मालूम होता है।

हो सकता है इस छोटी नाटिका के पढ़ने में थोड़ा बहुत आनन्द आपको मिल जाय। हो सकता है कि इसमें प्रगट किए गए बहुत से विचार आपको खुश कर सकें। पर अधिक संभावना इसी की है कि इसके विचार समाज

की वर्तमान स्थिति में अधिकतर लोगों की भावुकता, विचारधारा और सामाजिक तथा धार्मिक विश्वासों को चोट पहुँचाए। और इन विचारों के लिए आप लेखक पर खफा हों। पर अनुरोध लेखक का ऐसा है कि वह तो बेचारा एक टाइप-राइटर मैशीन जैसा है, उसने लिख दिया, बस, उसका कर्त्तव्य शेष हुआ। विचार नाटिका के पात्र-पात्रियों के हैं जो उनके अपने हैं, उनपर न लेखक का कोई हाथ है और न आपका। और विचार-स्वातन्त्र्य के इस युग में उन्होंने भी बहुत-सी बातें कहना उचित समझा, कह डाला। अगर मंजूर हो, आप उनसे उलझते रहें, लेखक को अगर हक है, इसका पूर्ण अधिकार आपको देता है। पर लेखक से इसका जवाब तलब न करें कृपया।

लेखक इस वक्त, जब वह अपनी मैशीन वाली ड्यूटी को अलग रख, अपने व्यक्तिगत हैसियत से इन प्राणियों, उनके कार्यकलाप और विचारों को देखता है तो इसे जरा भी आश्चर्य नहीं होता। इसने एक वैज्ञानिक का ऐटीचूड ले रखा है, जो जैसा है उसे वैसा ही देखता है, अच्छाई-बुराई का फैसला देना अपने दायरे के बाहर की बात समझता है। हाँ, लेखक सारी बातों का विश्लेषण कर कुछ बातें कह देना चाहता है, चूँकि कहने की उसकी आदत है और उसे इसकी कभी पर्वाह नहीं रही, कोई सुनता भी है या नहीं।

वर्तमान नाटक के अन्दर एक पात्र है किशोर। और इस किशोर ने जैसे अपने दिमाग को दिन-रात चालू रखने की कसम खा रखी है। उलझा भी रहता है हमेशा कुछ ऐसी बातें लेकर जिन्हें समाज बिल्कुल बेकार, और फालतू समझता है। लेकिन आदमी की विचार-बुद्धि, उसका न्याय-पसन्द मन कभी शान्त नहीं रह सकता और समाज की किसी भी प्रकार की उपेक्षा या दबाव उन्हें सोचने से नहीं रोक सकते। धार्मिक और सामाजिक दुनियाँ में ऐसा मन कदम-कदम पर धक्के खा सकता है, चोटें पा सकता है और कुचले जाने की कोशिश का सामना कर सकता है, पर यह मन कभी भी अपने को धोखा नहीं दे सकता। जिस दुनियाँ को लोगों ने एक माया बना रखा है उसका यह माया का जाल ऐसे मन को कभी बर्दाश्त नहीं हो सकता

और वह इसे फाड़ने की सतत चेष्टा करता ही रहेगा। जीवन हार सकता है, लाचारी के बंधन को स्वीकार कर सकता है, पर बुद्धिवादी मन हार नहीं सकता। वह इस धोखे की टट्टी को तोड़ डालेगा ही। और बहुत कुछ ऐसा ही है इस किशोर का मन। उसे शायद वर्तमान समाज कुछ विद्रोही-सा कहेगा।

हमारा सामाजिक जीवन क्या है? कैसा है? और जैसा है, क्यों है? क्या यही सच्चा रास्ता है? क्या यही आदर्श-जीवन है? क्या यही अवस्था मनुष्य के वैयक्तिक और सामाजिक जीवन का चरम आदर्श है? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिन्हें संसार कभी सुलझा नहीं सका। और तरह तरह के कामों में व्यस्त मनुष्य जैसे को तैसा मान कर अपने में ही बझा जीवन बिता देता है। उसे इन बातों की पर्वाह करने की फ़ुर्सत ही नहीं। फिर भी बहुत-से मानव-मन इन गुत्थियों को सुलझाने की चेष्टा करते ही रहते हैं। और भीतरी और बाहरी आवश्यकताओं के कारण जब हठात कोई परिवर्तन आ उपस्थित होता है तो समाज की आँखें फट जाती हैं और उसे ताज्जुब होता है, ऐसा हुआ क्यों? पर बुद्धिवाले समाज के इस आश्चर्य पर थोड़ा-सा मुस्कुराकर फिर अपने काम में लग जाते हैं।

हमारे सामाजिक जीवन की सबसे बड़ी समस्या है विवाह। इसी केन्द्र के चारों तरफ हमारे सामाजिक जीवन की और सभी समस्यायें घूमती रहती हैं। और चूँकि समाज और व्यक्ति एक दूसरे के साथ बुरी तरह गुँथा हुआ है, वैयक्तिक भी अधिकांश प्रश्न इसी के साथ उलझे रहते हैं। ज्यादा हालत में व्यक्ति को समाज के सामने सर झुकाना पड़ता है, क्योंकि वह ताकतवर है। फिर भी व्यक्ति की समस्याओं का अन्त नहीं होता। वे ज्यों की त्यों रह जाती हैं। फिर समाज और व्यक्ति में संघर्ष होता है, और यह संघर्ष भगवान से भी अधिक पुरातन और स्थायी है। विवाह इसी समाज की एक दृढ़ संस्था है जिसमें समाज खुद भी बँधा हुआ है और व्यक्ति को भी बाँधकर रखे हुए है। और इसी प्रश्न पर व्यक्ति का समाज से अत्यधिक संघर्ष है।

मनुष्य के जीवन को चलानेवाली दो बड़ी प्रवृत्तियाँ हैं—आत्म-रक्षक

(Self-Preservative) और जाति-रक्षक (Race-Preservative) प्रवृत्तियाँ (Instincts)। दोनों समान शक्तिशाली हैं। दोनों प्रवृत्तियों के संगम से समाज की उत्पत्ति होती है। आत्म-रक्षक प्रवृत्ति अपने अहम् (Ego) को ही सब कुछ मानती है और इसलिए अहम् का सुख ही उसका प्रेय है। किन्तु जाति-रक्षक प्रवृत्ति पूरी जाति के सुख को श्रेय समझती है। इस कारण व्यक्ति का प्रेय समाज का श्रेय हमेशा—ज्यादा हालत में—नहीं हो सकता।

समाज प्राणिशास्त्रीय (Biological) उपयोग को मुख्य मानता है, व्यक्ति मनोवैज्ञानिक (Psychological) उपयोग को। एतदर्थ समाज के श्रेयस् और व्यक्ति के प्रेयस् का संघर्ष अत्यावश्यक हो जाता है।

किशोर जिसे बार-बार प्रवृत्ति कहता है वह व्यक्ति की Ego-instinct है जो मुख्यतः सुख-वृत्ति (Pleasure Principle) द्वारा परिचालित होती है। जिसे वह विचार कहता है वह मन की वह शक्ति है जो बहुत-सी चीजों को एक खास तरीके पर सजाकर उनका संबंध समझने की कोशिश करती है। और सामाजिक नियमों और विचार का जो संघर्ष उसकी आँखों के सामने इतना प्रधान होकर नाचता रहता है वह इसी वैयक्तिक और सामाजिक प्रवृत्तियों का संघर्ष है। और किशोर एक विचारशील मानव-मन की प्रतिमूर्ति बनकर इन दो प्रवृत्तियों का समन्वय करने की कोशिश करता है। जिस परिणाम पर वह पहुँचता है, वह उसका अपना है, जिसके संबंध में मुझे कुछ नहीं कहना।

लेकिन असली बात तो छूट ही गई। इन इतनी बातों के बीच विवाह कहाँ आता है? आता है, और उसी की इतनी भूमिका हुई।

मनुष्य सुख चाहता है और सेक्स (यौन-वृत्ति) उसके सुख का प्राकृतिक केन्द्र है। किन्तु प्रकृति ने इस सेक्स (Sex) को सिर्फ मनुष्य के अपने आनन्द के लिए नहीं, सृष्टि की रचना के लिए भी निर्मित किया है। मनुष्य सुख चाहता है, लेकिन नाश में सुख नहीं। इस कारण वह अपना निर्माण

करता है, अपने को पुनः पैदा करता है। और सेक्स का यह भी एक बड़ा काम है। स्त्री-पुरुष के सम्मिलन स्वरूप जो सन्तान पैदा होती है वही विवाह नाम की चीज को अत्यावश्यक बना देती है। शिशु का लालन-पालन, उसकी शिक्षा-दीक्षा, उसका सारा जीवन ही उसके निर्माता पर निर्भर करता है। और इसलिए माता-पिता के कर्त्तव्य अत्यन्त कठिन हो उठते हैं। यदि ऐसी हालत में माँ या बाप बच्चे की उपेक्षा करें तो बच्चा चाहे तो उल्टे पैर वापस जाता है या फिर नालायक होकर भूखों मरने की जिन्दगी बसर करता है। अतः विवाह नाम की संस्था जरूरी हो पड़ती है।

तो हम देखते हैं कि विवाह का वास्तविक अर्थ शिशु का पालन और उसे एक सुयोग्य नागरिक बनाना ही है। तो आखिर विवाह में सेक्स का क्या स्थान है? अगर सेक्स विवाह का केन्द्रबिन्दु है तो फिर ऐसा क्यों होता है कि पुरुष का मौके-बेमौके फिसल पड़ना उतना बुरा (कम-से-कम भारतीय समाज में) नहीं होता, और स्त्री का एक बार का 'अपराध' भी उसे स्त्री होने के सर्वथा अयोग्य बना देता है। जरा-सी बुद्धिमानी से देखने से सारी बात साफ हो जाती है। स्त्री के पक्ष से, स्त्री के पर-पुरुष सहवास से एक नये प्राणी की सृष्टि हो जाने का भय है, और इस पर-सन्तान का पुरुष और घर कभी अपने ऊपर भार नहीं ले सकता। लेकिन पुरुष का रास्ता छोड़ना इस खतरे से खाली है। और इसलिए ही उपर्युक्त व्यवस्था समाज में संभव है। सीधी बात, सन्तान का वास्तविक माता-पिता अकेली माता है, पिता का स्थान तो बिल्कुल गौण ही है।

Westermarck, जिसका विवाह का इतिहास संसार में सबसे अधिक विद्वतापूर्ण समझा जाता है, यह कहते हुए भी कि विवाह की परिभाषा नहीं दी जा सकती, एक जगह लिखता है—

"Human marriage is a more or less durable connection between male and female, lasting beyond the mere act of propagation till after the birth of the offspring."

(अर्थात्, मानव-विवाह स्त्री-पुरुष के बीच का थोड़ा या बहुत स्थायी वह संबंध है जो केवल सृष्टिनिर्माण कार्य तक ही सीमित नहीं रहकर बच्चे के जन्म के बाद तक भी कायम रहता है।) इस पूरी बात के दो हिस्से हो सकते हैं—एक तो सन्तानोत्पत्ति का कार्य (अथवा सेक्स), दूसरा सन्तानोत्पत्ति के बाद का कार्य। कोई पहली बात को प्रधान मानता है, कोई दूसरी को। लेकिन वास्तव में दोनों बातें एक दूसरे के साथ गुँथी हुई हैं। अतः विवाह, जो इस दृष्टि से केवल एक सामाजिक संस्था रह जाती है, इन दोनों की भित्ति पर ठहरा हुआ है।

पर संसार जानता है, सन्तान-रहित भी यौन-संबंध हो सकता है। फिर ऐसा सेक्स इस वैवाहिक संस्था की जड़ हिला देने के लिए क्योंकर काफी हो सकता है? शायद इसलिए कि समाज ने इस सेक्स के ऊपर बहुत अधिक भार दे रखा है। समाज बिल्कुल भूल चुका है कि वास्तव में सेक्स विवाह का मुख्य नहीं, सबसे गौण अंग था। अभी भी बहुत-से समाजों में झुण्ड के झुण्ड स्त्री-पुरुप एक दूसरे के साथ यौन-संबंध रखते हैं, और आवश्यकता और इच्छा होने पर ऐसा संबंध रखते हुए भी एक स्त्री एक पुरुष मिलकर घर बसा लेते हैं।

मतलब—बहुत दूर तक यह बात सच है—जैसा कि हैवलॉक एलिस (संसार का सर्वश्रेष्ट सेक्स-साइकोलॉजिस्ट) कहता है—विवाह **'is not simply a method of sexual association. It is an Institution, and while it gives "the right to sexual intercourse it is not necessarily exclusive."** अर्थात् विवाह सिर्फ स्त्री-पुरुप के यौन-संबंध का रास्ता नहीं, यह एक ऐसी संस्था है जो यौन-संबंध का अधिकार तो अवश्य देती है, किन्तु यही (यौन-संबंध ही) आखिरी चीज नहीं'।

इतनी बातें कह चुकने के बाद अब बहुत कुछ कहना बाकी नहीं रह जाता। मैं हर्गिज भ्रष्ट-चरित्रता (जिसे हमारा धर्म और समाज ऐसा कहता

है) का प्रचार नहीं चाहता। मैंने वैज्ञानिक तरीके पर समाज की एक सर्व-श्रेष्ठ संस्था की समीक्षा करने की चेष्टा की है और देखा है कि विवाह के Biological एवं Psychological आधार क्या हैं, और Sociologically (समाजशास्त्रीय दृष्टि से) इसका महत्व क्या है। मैं एक बात जान-बूझकर ही छोड़ता रहा हूँ वह है विवाह और धर्म का संबंध। हमारे यहाँ विवाह एक धार्मिक बंधन, एक धार्मिक संस्था समझी जाती है। पर वास्तव में धर्म की उत्पत्ति कुछ मनोवैज्ञानिक तथ्यो पर होती है, और धर्म मनुष्य की कमजोरियों का सहारा लेकर मजबूत हो पड़ता है। इसलिए प्रायः हम अपने अच्छे बुरे सभी प्रकार के कामों पर धार्मिक रंग दे देते हैं। समाज अच्छे कामो के लिए अपने पुरस्कार को काफी नहीं समझ अच्छे काम करने वाले को आनेवाली दुनियाँ में अच्छे पुरस्कार दिलवाने का लोभ देता है। उसी तरह बुरे कामों के लिए अपने दण्डों को यथेष्ट नहीं समझ उन्हें देवताओं आदि द्वारा दण्डित होने की धमकी देता है। और इस तरह के पुरस्कार और दण्ड विधान के ऊपर ही धर्म अवस्थित है। आवश्यकताएँ तथा परम्परा अन्धविश्वासो में परिणत होती हैं और फिर उन्हें हम धर्म का नाम देते है। धर्म का आधार है विश्वास, जो तर्क को साथ ले नहीं सकता, क्योंकि तर्क अथवा विचार धर्म की जड़ काटते हैं।

और यही धार्मिक रंग, इसी नियम के अनुसार, हमारे समाज ने विवाह को भी दे रखा है, कारण भारत को धार्मिक रंग हर बात पर दे देने का रोग-सा रहा है।

अस्तु, अब मैं बहुत कुछ कहना नहीं चाहता। मेरा ख्याल है, इन बातों को पहले पढ़ लेने के बाद नाटिका की विचारधारा को अच्छी तरह समझ सकने में बहुत-कुछ सुविधा हो सकती है।

हाँ, एक बात के लिए माफी माँग लूँ, बातें आपकी, आपकी ही क्यो, हमारी, सब लोगों की, सारे मानव-समाज की हैं, और इन्हें हमने जरूरत से ज्यादा खुले और साफ शब्दो में रख दिया है। पर लेखक की वैज्ञानिक रुचि

ऐसा करने को बाधित करती है। मै समझता हूँ अगर किन्हीं महाशयों की भावुकता (Sentimentality) पर किसी तरह की चोट लगी हो तो मुझे क्षमा करेंगे। सत्य बहुत मौकों पर थोड़ा अप्रिय हो ही जाता है।

अगर आप इसे पढ़कर यहाँ तक पहुँचे हों, तो आपको धन्यवाद।

बस।

लोहरदगा
२६-४-४०

द्वारका प्रसाद

आदमी

(एकांकी समस्या-नाटक)

पात्र-पात्री

गोपाल शरण गुप्त

किशोर

निशा

श्यामा

बिहारी

एक डाक्टर

समय—अति-आधुनिक

स्थान—एक भारतीय शहर

सारी घटना शाम ६॥ बजे से रात १०॥ बजे के अन्दर समाप्त हो जाती है।

आदमी
एकांकी नाटक

(गोपालवाबू का बैठकखाना आधुनिक ढंग पर सजा हुआ। कमरे के मध्यभाग में एक छोटा-सा गोल टेबुल रखा हुआ है, जिसपर विखरी हुई दो तीन कितावें पड़ी हुई हैं और इन्क-स्टैन्ड के वगल में एक पेपर वेट से दवाकर एक अखवार रखा है। टेवुल के पास पीछे की ओर एक सोफा रखा है, उसके वगल में दाहिनी ओर के कोनेकी ओर मुँह करके तीन-चार आदमी के वैठने लायक एक सेट्टी रखी है। दाहिनी वगल दो कुर्सियाँ रखी हैं। पीछे की ओर दरवाजा है अन्दर जाने का, जिससे थोड़ा हटकर लकड़ी की एक ऊँची आलमारी रखी है। वायीं ओर एक चौकोर टेवुल पर एक रैक है जिसपर कुछ कितावें पड़ीं हैं, लदी हुई-सी। उसीके पास दीवाल में विजली का स्विच है। दाहिनी ओर दरवाजा वाहर जाने का। दरवाजों पर पर्दा पड़ा है।

शाम ६॥ वजे का समय है। गोपालवावू सोफे पर वैठे हुए हैं। उम्र ४५-५० के लगभग। चलते पुर्जे आदमी हैं, आँखों में विचार-पूर्ण उच्छृङ्खलता के चिह्न मालूम होते हैं। काफी सुन्दर और स्वस्थ शरीर है। चेहरेपर का गाम्भीर्य भी हँसता मालूम होता है।

उनके सरके ऊपर छतसे लटके विजली के डोमसे कमरा जगमगा रहा है)

गोपाल—कम-से-कम मेरे मकान के अन्दर ये वातें नहीं होनी चाहिए। तुम जानते हो, ऊपर से इतना कड़ा होते हुए भी मैं दिलका कितना मुलायम हूँ।—ग्लास रख दो—मैं नहीं चाहता कि मेरे घरकी हवा किसी तरह भी विगड़े। समझे?

बिहारी—(तश्तरी उठाता हुआ चुप रहता है)

गोपाल—जाओ।

(बिहारी जा रहा है)

गोपाल—श्यामी को भेज देना।

(बिहारी फिरकर उनकी ओर देखता है और बाहर हो जाता है।)

गोपाल—हवा बिगड़ रही है। और मेरी सारी जिन्दगी इसी हवा को साफ रखने पर निर्भर करती है। पाप की बू तक नहीं आना चाहिए। उसने एकको डँसा है, दूसरे को भी डँसेगा और फिर यह ऊँची इमारत जमीन पर आ रहेगी।

(पीछे की ओरके दरवाजे से श्यामा आती है। श्यामा गोरी नहीं तो साँवली भी नहीं, अत्यंत चंचल आँखें—देखनेवाले की नज़र पहले इन्हीं पर पड़ती है, बालों को मानो जान-बूझकर खुली रखती है, वह जानती है, यों रखने से उसकी खूबसूरती को नुकसान नहीं, नफा है। साफ सुथरी साड़ी, काम करने में आफियत के ख्याल से आँचल काँधे के पीछे ले जाकर कमर में बाँध दिया गया है। चेहरे पर दुष्टता-भरी मुसकान नाचती रहती है। उम्र १६ सत्रह के लगभग।

आकर टेबुल के पास क्षणभर के लिए खड़ी रहकर कुछ भयभीत-सी पर प्रश्नवाचक मुद्रा से गोपालबाबू की ओर देखती है। गोपालबाबू उसकी ओर थोड़ी देर निहारते हैं।)

गोपाल—श्यामी, इधर आओ।

श्यामा—यहाँ हूँ मालिक।

गोपाल—श्यामी, मैं तुम्हें मानता हूँ, इसके ये मानी नहीं कि तुम इससे नर फायदा उठाओ। मैंने कहा था, बिहारी को अपने से अलग रक्खो।

(श्यामा शरमा जाती है और उँगली से टेबुल खरोचने लगती है।)

गोपाल—बिहारी जबतक तुम्हारे साथ शादी नहीं करता, ये बातें नहीं हो सकतीं।

श्यामा—वह मेरे साथ शादी करने जा रहा है मालिक। तभी तो—(आगे कह नहीं सकती।)

गोपाल—अँ? हमें तो पता नहीं। तो उसने कहा क्यों नहीं?

श्यामा—आपने मौका नहीं दिया होगा मालिक। हम दोनों खुद आपके पास आने वाले थे।

गोपाल—यह लो, इन दो रुपयों से आज तुम दोनों एक छोटी दावत कर दो। यहाँ आओ।

(श्यामा आती है)

गोपाल—और देखो, तुम जानती हो, किशोरबाबू कैसे आदमी हैं। मैं नहीं चाहता जब तक तुम दोनों की शादी न हो जाय, तुम एक दूसरे के साथ मिलो—कम-से-कम किशोर बाबू के आगे।

श्यामा—किशोरबाबू तो कुछ नहीं जानते।

गोपाल—वही तो मैं भी कहता हूँ, किशोर कुछ नहीं जानता इन बातों को, और न मैं चाहता हूँ, तुम दोनों किसी भाँति भी उसे यह जानने दो। समझी? लो।

(गोपालबाबू रुपए देने के लिए हाथ बढ़ाते हैं, श्यामा के बढ़े हाथ की उँगलियाँ उनसे छू जाती हैं और श्यामा हाथ खींच लेती है। गोपाल-बाबू क्षणभर तक उसके चेहरे को देखते रहते हैं। फिर संभल कर)

गोपाल—लो! झिझकती क्यों हो?

(श्यामा का बढ़ा हुआ हाथ इस बेर गोपालबाबू के हाथ में आ जाता है, वे उसकी उँगलियों को पकड़े रहते हैं। श्यामा शर्म से लाल हुए चेहरे को एक बार ऊपर उठाती है—घड़ी भर तक बिल्कुल शान्ति रहती है

फिर अपनी चंचल आँखें गोपालबाबू की आखों में डालकर वह किंचित मुस्कुराती है।)

गोपाल—श्यामा, तुम सब कुछ समझ गई !

श्यामा—(सिर हिलाती है जानो सब समझ गई हो।)

गोपाल—सब न ?

श्यामा—जी हाँ, सब, आपकी बातें भी।

(गोपाल बाबू उसे पास खींच लेते हैं, वह बेविरोध विरोध करती जरा आगे बढ़ जाती हैं।)

गोपाल—और किशोर न जान पावे—

श्यामा—कि मैं मिलूँ ?

गोपाल—हाँ !

श्यामा—कम-से-कम किशोरबाबू के जानते।

(मुस्कुराती है)

गोपाल—(हाथ छोड़ कर) दुष्टा !

(श्यामा जा रही है। इसी समय किशोर आता है। किशोर की उम्र करीब २०–२१ की होगी। गंभीरता भरा हुआ सुन्दर चेहरा। आँखें शान्त, होठों पर विचार के चिन्ह। बिल्कुल सौम्य मूर्ति।
पोशाक से कौलेज का विद्यार्थी मालूम होता है, पर उसकी गंभीरता उसे दार्शनिक-का-सा चेहरा देती है।)

गोपाल—(पीछे की ओर देख कर) श्यामा, और ये रुपए तुम नहीं ले गई ? (श्यामा लौटती है। गोपालबाबू किशोर की ओर देखकर) आओ किशोर। जानते हो, श्यामा की शादी बिहारी से होने जा रही है।

किशोर—सच (जानो उसने कहा हो—ओ) ?

(श्यामा रुपए लेकर चली जाती है। किशोर एक कुर्सी खींचकर बैठ जाता है और अखबार उठा लेता है।)

गोपाल—कॉलेज कब तक बन्द है किशोर ?

किशोर—अभी पाँच छः दिन और बाकी हैं।

गोपाल—तुम्हारी पढ़ाई कैसी चल रही है ?

किशोर—पिताजी, मैं अभी अपनी पढ़ाई की कैफियत नहीं देने आया। मेरे अन्दर एक शंका पैदा हुई है और उसी पर थोड़े विचार आपके जानने आया हूँ।

गोपाल—वह तो मैं पहले ही से समझ गया था। तुम्हारी फिलासफी तुम्हें खा डालेगी किशोर। सिद्धान्त सिद्धान्त हैं, जीवन और सिद्धान्त साथ साथ नहीं चल सकते।

किशोर—मैं यह नहीं मानता। हममें और पशु में केवल एकही तो अन्तर है पिताजी, हम सोच सकते हैं, तर्क कर सकते हैं, वे सोच नहीं सकते।

गोपाल—और इसीलिए हमारे सभी कामों का तराजू तर्क हो—यही न ? तुम ठीक कहते हो।

किशोर—यहीं पर मुझे सन्देह है। आप तर्क से भागना चाहते हैं, मैं भी आपको तर्क में घसीटना नहीं चाहता। पर मेरा सवाल है, हमारे जीवन में प्रवृत्ति का क्या स्थान है ?

गोपाल—तुम यही न कहना चाहते हो कि प्रवृत्तियाँ पशुत्व के गुण हैं, और आदमी इन्हें अपनी तर्कना शक्ति से परास्त करके अपने वश में रख सकता है।

किशोर—मेरी सारी जिन्दगी इसी पर निर्मित है पिताजी, और आप इसे नहीं उड़ा सकते। मेरी समझ में एकही बात आई है, मैं प्रवृत्तियों को नाश कर सकता हूँ, क्योंकि मेरे अन्दर तर्क है, विचार है। फिर भी प्रवृत्तियों का इतना जोर संसार में क्यों है ?

(बिहारी आकर गोपाल बाबू को एक कार्ड देता है, देख कर उनके चेहरे

पर एकाएक बिजली-सी कौंध जाती है। घबड़ाई-सी आवाज़ में बिहारी से कहते हैं।)

गोपाल—बिहारी, उससे,—उनसे कहो, अभी नहीं मिल—

(वाक्य पूरा नहीं होता, निशादेवी आ जाती हैं। उसने गोपाल बाबू को नमस्कार किया है। शायद गोपाल बाबू ने जवाब दिया हो, कम-से-कम किशोर ऐसा नहीं देखता।

निशा की उम्र करीब ४० की होगी। खूबसूरती समाप्त हो चली है, चेहरे पर अत्यधिक कामुकता के निशान मालूम होते हैं, पर कम-से-कम इस वक्त इसने अपने को सजा रखने का यत्न किया है।

किशोर उसकी ओर कुछ कुतूहल की नज़रों से देखता है, फिर भी उसकी शान्ति में तनिक भी खलल नहीं पहुँचती। निशादेवी आकर एक कुर्सी पर ठीक गोपाल बाबू के सामने बैठ जाती है।)

गोपाल—आप तो इसे नहीं पहचानती होंगी निशादेवी ?

निशा—पहचानती भी हूँ और नहीं भी।

गोपाल—आप कैसे पहचानेंगी ? मेरा लड़का किशोर। किशोर, निशादेवी, हमारे एक दोस्त की भाभी, रहती हैं—(क्या कहें ?)

निशा—नैनीताल में।

(किशोर प्रणाम करता है। वह मुस्कराकर जवाब देती है।)

गोपाल—आपको देखे एक ज़माना हुआ निशादेवी। जबसे शंकर की मौत हुई—बेचारा कितना अच्छा आदमी था, वैसा दोस्त फिर मुझे मिला नहीं—आज करीब ५ साल गुजरे, आपसे भेंट नहीं हुई।

निशा—होती भी कैसे ? मैं कुछ ऐसे फेर में पड़ी कि इधर आ ही नहीं सकी।

गोपाल—शंकर छूटा, मैं कैसे बताऊँ आप लोगों की जुदाई

से हमें कितनी तकलीफ हुई है। किशोर, जरा चा-पानी का इन्तज़ाम कराओ।

(किशोर उठकर जाता है। जब तक कमरेसे वह बाहर नहीं हो जाता, दोनों चुपचाप बैठे हुए उसी को जाते देख रहे हैं। उसके बाहर होते ही गोपाल उठ खड़े होते हैं और बड़ी व्याकुलता से कहते हैं)

गोपाल—रानी, तुम क्यों आईं यहाँ? तुम्हें यहाँ किसने बुलाया? और सो भी ऐसे मौके पर। हे भगवान! तुम्हें किस चीज़ की ज़रूरत है? रुपयों की? ले जाओ जितने चाहो रुपए। पर जल्दी चली जाओ यहाँ से। ऐसे समय पर आना!

निशा—(शान्ति के साथ) गोपाल, इतने घबड़ा क्यों रहे हो, इतने अशान्त क्यों हो रहे हो? जरा अपने को शान्त करो।

गोपाल—मैं तुम्हें भगाना नहीं चाहता, तुमसे घृणा नहीं करता। पर, पर तुम देखती हो परिस्थिति! किशोर का क्या होगा? अगर किशोर जान जाय!

निशा—क्या किशोर नहीं जानता?

गोपाल—नहीं।

निशा—तुमने बताया नहीं?

गोपाल—बताया नहीं? तुम यह क्या पूछती हो?

निशा—मैं पूछ रही हूँ, तुमने बताया क्यों नहीं?

गोपाल—पागल हुई हो रानी? किशोर केवल एक बात जानता है, उसके माँ नहीं।

निशा—उसने क्या पूछा था, उसकी माँ क्या हुई?

गोपाल—उसे विश्वास दिलाया गया है, उसकी माँ चेचक से हरिद्वार में मर गई।

निशा—और कि उसकी माँ तीर्थ करती हुई मरी हैं, अँ?

गोपाल—व्यंग नहीं रानी, हाँ, उसे विश्वास है, उसकी माँ

अत्यन्त पवित्र है, पाक, साफ। दुनियाँ की कालिमा उसे छू तक नहीं गई।

निशा—और उसका पिता धर्म का अवतार!

गोपाल—स्थिति को समझने की कोशिश करो रानी। तुमने केवल उसीके लिए यह एकान्त-वास १८ वर्षों तक किया है।

निशा—हाँ, १८ वर्षों तक एकान्त-वास मैंने किशोर के लिए किया है और अब मैं अच्छी तरह जान गई हूँ, इससे बड़ी भूल और कोई नहीं हो सकती थी।

गोपाल—तो तुम अपने को किशोर पर प्रगट करना चाहती हो?

निशा—मैं अपनी भूल को सुधार देना चाहती हूँ।

गोपाल—तुम जानती हो, किशोर की ज़िन्दगी—

निशा—मैं जानती हूं, किशोर की ज़िन्दगी को तुमने एक धोखे के जाल से छा दिया है। किशोर के लिए तुमने दुनियाँ के असली रुख को दूर कर दिया है और उसे आदर्शों की दुनियाँ में रख छोड़ा है। इस आदर्श की नींव बड़ी कमज़ोर है।

गोपाल—यही आदर्श उसे गिरने से बचाए रखेंगे। तुम मुझे छोड़ दूसरे के साथ भाग खड़ी हुईं, जानती हो, इसका क्या असर बच्चे पर होता! उसकी ज़िन्दगी बर्बाद होती। उसकी माँ पापिन, व्यभिचारिणी!

निशा—इसका ज्ञान उसके जीवन को बचा लेता। अज्ञानता का पर्दा बड़ा कमज़ोर होता है। यह भी सोचा है, कहीं यह फट जाय? उसके आदर्शों का किला टूट जायगा और फिर वह अधःपतन के किस गड्ढे में गिर जायगा? तुमने यदि उसे पहले से वाकिफ करा दिया होता, दुनियाँ क्या है, उसे दुनियाँ के संबंध में कभी गलत धारणा नहीं होती।

गोपाल—दुनियाँ बुरी है, इसका ज्ञान बच्चे को बुरे की ओर खींच ले जाता, क्योंकि उसे वह प्राकृतिक समझता।

निशा—इसलिए अप्राकृतिकता के बादल से उसे ढँक दिया, न?

गोपाल—जानती हो, हरिद्वार से तुम्हारे निकल भागने के बाद मैंने क्या किया? सब से पहले तुम्हारी मौत की खबर मैंने यहाँ फैला दी। शिवपुकार को जहर दे दिया।

निशा—शिवपुकार को जहर? हुं:।

गोपाल—गलत न समझो रानी। वह बूढ़ा शिवपुकार अकेला आदमी था जो तुम्हारे भागने की बात जानता था। मैंने उससे वचन लिया कि वह यह बात कभी भी किसी पर प्रगट नहीं करेगा। किशोर का लालन-पालन वही करने लगा। वह इसे अपनी जान से भी बढ़ कर मानता था। पर ज्यों-ज्यों किशोर समझदार होने लगा, मेरी बेचैनी बढ़ती गई। मैंने अपने को संभालने की बड़ी कोशिश की, अपने को समझाने के बहुत उपाय किए। पर, तुम मेरे मन की हालत समझ सकती हो।

निशा—और जब किशोर समझदार नहीं हुआ था तुमने बूढ़े को जहर दे दिया?

गोपाल—किशोर की उम्र १६ की थी, वह समझदार हो चुका था। और आज से ठीक चार बरस पहले बूढ़ा शिवपुकार इस दुनियाँ से उठ गया।

निशा—उठा दिया गया।

गोपाल—अपनी लड़की श्यामा को मेरे माथे छोड़ कर।

निशा—तब?

गोपाल—तब क्या रानी? मैंने किशोर को चारों ओर से बचा कर रखा। मुझे बराबर डर लगा रहता कि कहीं पापी

दुनियाँ की छाया न उस पर पड़ जाय। इस लिए मैंने उसे बम्बई भेज दिया। वह अभी भी वहीं के कौलेज में पढ़ता है। छुट्टी में आया हुआ है। अगर तुम चार दिनों के बाद आतीं!

निशा—क्यों?

गोपाल—चार दिनों के बाद वह फिर बम्बई चला जायगा, उसका कौलेज खुलता है।

निशा—अच्छा, क्या समझते हो, बम्बई रह कर वह दुनियाँ से वाकिफ नहीं हो सका होगा, अब तक?

गोपाल—वह ऐसा लड़का ही नहीं, तुमने उसे देखा है। फिर उसके अभिभावक वहाँ हमारे मित्र प्रेम कुमार शास्त्री हैं।

निशा—खूब, तुमने शास्त्रीजी को चुना? सच है। तभी तो सोच रही थी, लड़का इतना गम्भीर क्यों मालूम होता है। शास्त्रीजी इस संसार के जीव नहीं, इसके सभी फन्दों से अलग, हर कामों में विचार और आदर्शों की लीक पर चलने वाले।

गोपाल—हाँ, वे बड़े कड़े गार्जियन हैं, एक मिनट भी किशोर को आँखों से ओझल नहीं होने देते। मुझे अपने पास रखने में डर मालूम होता था।

निशा—क्यों? क्या तुम आदमी नहीं?

गोपाल—आदमी हूँ इसीलिए निशा! मेरी फिलासफी बड़ी कमजोर है। पाप मैं मानता नहीं। यह समाज को कायम रखने के लिए एक वितण्डा खड़ा कर दिया गया है, एक हौव्वा कहो इसे लोगों को डराने के लिए।

निशा—तभी लड़के पर पाप की छाया नहीं पड़ने देते!

गोपाल—यह मेरी कमजोरी है रानी। प्रवृत्तियों का जोर मानना पड़ता है और साथही मानना पड़ता है भावुकता का प्रभुत्व। तुम्हारी हरकतों ने मेरी भावुकता को गहरी चोट

पहुँचाई; मैं खूब अच्छी तरह जानता हूँ, वासना के क्षणिक आवेश में आकर आदमी कुछ ऐसे काम कर डालता है जिसे वह मामूली हालत में नहीं करता। तुम्हारी हालत भी मैं समझता हूँ। पर मेरी कमजोरी, मैं तुम्हें माफ न कर सका। कम-से-कम मेरे दिल का घाव भरा नहीं।

निशा—तुम्हारी फिलासफी को मैंने समझा है गोपाल। जानते हो, तुम्हारे पास से जाने के बाद मैंने क्या किया? एक नये आदमी से दोस्ती की।

गोपाल—मेरी नज़रों में अपने को और न गिराओ, रानी। शंकर का क्या हुआ?

निशा—यह तुम्हारी ही तो फिलासफी है, सुन्दरता वास्तव में कोई चीज़ नहीं। वासना की आँखों से जिसे देखो, वही सुन्दर है। वास्तविक सुन्दरता नाम की कोई चीज़ नहीं। कभी यह सुन्दर है, कभी वह।

गोपाल—शंकर तुमसे प्रेम करता था।

निशा—हाँ, तब तक जब तक उसने मुझे सुन्दर समझा।

गोपाल—उसके बाद उसने तुम्हें छोड़ दिया।

निशा—हाँ, मैंने उसे छोड़ दिया। मेरा नया आदमी मेरे लिए ज्यादा सुन्दर था।

गोपाल—वासना के लिए अपनी जिंदगी को नर्क बनाया तुमने?

निशा—अपनी फिलासफी के खुद उल्टे न जाओ। मैं वासना में डूबी नहीं, मेरे सभी काम हिसाब से चलते रहे, मेरी आत्मा, जिसे समाज और धर्म आत्मा कहता है, उसने भी मुझे नहीं धिक्कारा। मेरी खूबसूरती थी, मेरे अन्दर वासना की प्यास थी, मेरा चाहने वाला मेरे लिए खूबसूरत था, मेरे लिए उसके अन्दर वासना थी और मेरी ज़िन्दगी शान्ति के साथ चल निकली।

गोपाल—मेरी फिलासफी ने तुम्हें बिगाड़ दिया रानी।

निशा—हर्गिज़ नहीं, बल्कि बना दिया। यही काम तो दिन-रात तुम्हारे समाज में जारी रहता है। स्त्री-पुरुष का हर जोड़ा अपनी ज़िन्दगी यों ही बिता देता है। पर उस पर समाज की मुहर है ब्याह, धर्म की छाया है और इसलिए वह ज़िन्दगी पुण्यमयी है।

गोपाल—वासना के लिए आदमी नहीं जीता।

निशा—यह मैं कब कहती हूँ? हाँ, अलबत्ता वासना जीवन का एक जरूरी अंग है, और इससे अलग तुम नहीं रह सकते। पर इससे यह न समझना कि वासना को मैं अत्यधिक स्थान दे रही हूँ—मैं ऐसा इसलिए कहती हूँ कि वासना को मैं बहुत कम महत्व देती हूँ। आदमी के अन्दर विचार भी हैं और प्रवृत्तियाँ भी। आदमी केवल विचार है, और जो काम वह जान-बूझ कर करे उसी पर तुम उसे तौल सकते हो। प्रवृत्तियाँ पशुत्व हैं, और पशु विचारहीन है, उसे भला-बुरा नहीं कहा जा सकता। भावुकता में आकर, प्रवृत्ति के चंगुल में फँस कर अगर कोई कुछ काम करे तो इस पर उसे भला या बुरा कहना निरी मूर्खता है। वासना एक प्रवृत्ति है, जिसे तुम जितना दबाना चाहोगे उतना ही वह तुम्हें जर्जर बनायेगी।

गोपाल—रानी, फिलासफी न समझाओ। इतना मैं भी समझता हूँ कि वासना बिजली की वह धारा है जिसे रोकने से वह शरीर और उस शरीर के अन्दर विचार करने वाली आत्मा को ही हानि पहुँचायेगी। उसे बाहर निकल जाने दो, इसी में आदमी का कल्याण है। और यह समाज की सबसे बड़ी भूल है कि वह आदमी को इन्हीं प्रवृत्ति और वासना के अनुसार नाप लेता है। इसीलिए मैं तुम्हें माफ कर सकता हूँ, मैंने माफ

कर दिया है। पर किशोर मेरा पागलपन है और मैं नहीं समझ सकता क्यों, जिसे दुनियाँ पाप कहती है, उसका स्पर्श भी किशोर को लगते मैं नहीं देख सकता। मैंने उसे इतने दिनों बचाया, उसकी खातिर हत्या तक की और इतने के बाद आज तुम अचानक आती हो, और मेरे इस जाल को तोड़कर उसका जीवन मिट्टी में मिला देना चाहती हो।

निशा—किशोर मेरा पुत्र है, मैं उसकी माँ हूँ—।

गोपाल—किशोर मेरा पुत्र है, मैं उसका पिता हूँ।

निशा—(मुस्कुराकर) तुम्हें विश्वास है कि किशोर तुम्हारा पुत्र है ?

गोपाल—तुम क्या कहती हो, रानी ?

निशा—मैं कहती हूँ—।

(श्यामा एक ट्रे पर चाय के सामान लिए आती है। निशा उसे परीक्षा की दृष्टि से देखती रहती है। पीछे-पीछे किशोर आता है और अपनी कुर्सी पर बैठ जाता है। गोपाल बाबू ऐसे देख रहे हैं जानो कुछ देख ही नहीं सक रहे हों, किशोर गोपाल बाबू और निशा की ओर देख रहा है, और श्यामा प्यालों में चा ढालती हुई रह-रह कर निशा को देखती है। पूर्ण शान्ति छाई हुई है।

श्यामा गोपाल बाबू को चा का प्याला देती है, वे चौंक जाते हैं, प्याला लेकर एकाएक मुँह से लगा देते हैं। निशा और किशोर को चा देकर क्षणभर तक 'और कुछ' के लिए खड़ी रहकर श्यामा धीरे-धीरे बाहर हो जाती है। किशोर चा पी रहा है, आँखें एक किताब पर हैं।)

निशा—हाँ, तो मैं कह रही थी—।

गोपाल—रा—निशादेवी ?

निशा—क्या तुम जानते हो— ?

(गोपाल बाबू के हाथ का प्याला तिर्छा हो जाता है, चा गिर जाती है। प्याला जल्दी से रखकर वह उठ खड़े होते हैं और दरवाजे की ओर जा रहे हैं। किशोर उनकी ओर ताज्जुब से देखता है। निशा मुस्कुरा रही है। पर किसी का ध्यान इधर नहीं।)

गोपाल—किशोर, यहाँ आओ (किशोर उठता है) तुमसे एक बात कहना है। तुमसे मैंने निशादेवी का परिचय करा दिया है।

निशा—किशोर, इधर आओ, तुमसे एक बात कहना बहुत जरूरी है।

गोपाल—किशोर !

निशा—किशोर !

गोपाल— { तुम इसको जानते हो ?—

निशा — { तुम्हें मालूम है ?—

(किशोर घबड़ाकर कभी इन्हें कभी उन्हें देख रहा है। बिल्कुल किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहा है।)

निशा—किशोर, तुम जानते हो तुम्हारी माँ—।

गोपाल—किशोर, इस स्त्री का मुझसे एक बात पर बहुत भारी झगड़ा हो रहा है और यह तुम्हें झूठी बातें कहकर मेरी जिन्दगी बिगाड़ना चाहती है। तुम इसकी बातें न सुनो।

किशोर—पिताजी, मैं आप लोगों की बातें नहीं समझ सकता।

(गोपाल किशोर को वहीं छोड़ आँखें लाल किए निशा की ओर बढ़ता है। उसकी मुट्ठियाँ बँधी हुई हैं।)

गोपाल—निशा, अपनी बातें हम फरिया लेंगे। तुम मुझसे बातें करो। किशोर, तुम जाओ यहाँ से। (किशोर जाना चाहता है, फिर ठिठक कर ठहर जाता है।) जाओ, मैं कहता हूँ, ईश्वर के लिए इस वक्त तुम यहाँ से जाओ।

(किशोर धीरे-धीरे बाहर चला जाता है। निशा [illegible] [illegible] [illegible]

है। गोपाल बाबू गुस्सा, घृणा, परिस्थिति की भयंकरता, अचानक छुटकारे के भाव आदि के कारण कुछ बोल नहीं सकते हैं। थोड़ी देर तक शान्ति रहती है।)

गोपाल—रानी, तुम्हें आज यह जगह छोड़ देना पड़ेगा।

निशा—क्यों ?

गोपाल—मैं कह रहा हूँ, आज, अभी, इसी वक्त यह शहर छोड़कर चली जाओ।

निशा—जाना ही होगा ?

गोपाल—हाँ, मैं कह रहा हूँ।

निशा—अगर न जाऊँ ?

गोपाल—अगर न जाओ ?—(आलमारी के पास जाकर दराज खींचता है और पिस्तौल निकालता है। उसकी पीठ निशा की ओर है इसलिए यह वह देख नहीं पाती।) मैंने एक खतरे को रास्ते से हटाया है, और दूसरे को भी हटाना ही होगा। (एकाएक घूमकर हाथ में पिस्तौल घुमाने लगता है।)

निशा—(मुस्कुराती है) मुझे भी इसी तरीके से ?—

गोपाल—हाँ, लाचारी है।

निशा—उसके बाद की अपनी हालत सोचो।

गोपाल—तुम्हारे बाद यह पिस्तौल मेरे काम आ सकती है।

निशा—और किशोर ? किशोर क्या समझेगा ?

गोपाल—(सिर नीचा कर लेते हैं, हाथ स्थिर हो जाता है।) समझेगा तूने मेरी हत्या की है, फिर डर कर आत्मघात।

निशा—ओ ? और उस वसीयतनामे का क्या होगा जो किशोर के लिए है ?

गोपाल—कैसा वसीयतनामा ?

निशा—सेठ रामनारायण का।

(गोपाल बाबू के [illegible] है, वा फिर जाता है। प्याला जल्दी में रखकर वह उठ खड़े होते हैं और दरवाजे की ओर जा रहे हैं। किशोर उनकी ओर ताज्जुब से देखता है। निशा मुस्कुरा रही है। पर किसी का ध्यान इधर नहीं।)

गोपाल—किशोर, यहाँ आओ (किशोर उठता है) तुमसे एक बात कहना है। तुमसे मैंने निशादेवी का परिचय करा दिया है।

निशा—किशोर, इधर आओ, तुमसे एक बात कहना बहुत जरूरी है।

गोपाल—किशोर !

निशा—किशोर !

गोपाल— {तुम इनको जानते हो ?—

निशा— {तुम्हें मालूम है ?—

(किशोर घबड़ाकर कभी इन्हें कभी उन्हें देख रहा है। बिल्कुल किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहा है।)

निशा—किशोर, तुम जानते हो तुम्हारी माँ—।

गोपाल—किशोर, इस स्त्री का मुझसे एक बात पर बहुत भारी झगड़ा हो रहा है और यह तुम्हें झूठी बातें कहकर मेरी जिन्दगी बिगाड़ना चाहती है। तुम इसकी बातें न सुनो।

किशोर—पिताजी, मैं आप लोगों की बातें नहीं समझ सकता।

(गोपाल किशोर को वहीं छोड़ आँखें लाल किए निशा की ओर बढ़ता है। उसकी मुट्ठियाँ बँधी हुई हैं।)

गोपाल—निशा, अपनी बातें हम फरिया लेंगे। तुम मुझसे बातें करो। किशोर, तुम जाओ यहाँ से। (किशोर जाना चाहता है, फिर झिझक कर ठिठक जाता है।) जाओ, मैं कहता हूँ, ईश्वर के लिए इस वक्त तुम यहाँ से जाओ।

(किशोर धीरे-धीरे बाहर चला जाता है। निशा कुटिल हास्य करती

है। गोपाल बाबू गुस्सा, घृणा, परिस्थिति की भयंकरता, अचानक छुटकारे के भाव आदि के कारण कुछ बोल नहीं सकते हैं। थोड़ी देर तक शान्ति रहती है।)

गोपाल—रानी, तुम्हें आज यह जगह छोड़ देना पड़ेगा।

निशा—क्यों ?

गोपाल—मैं कह रहा हूँ, आज, अभी, इसी वक्त यह शहर छोड़कर चली जाओ।

निशा—जाना ही होगा ?

गोपाल—हाँ, मैं कह रहा हूँ।

निशा—अगर न जाऊँ ?

गोपाल—अगर न जाओ ?—(आलमारी के पास जाकर दराज खींचता है और पिस्तौल निकालता है। उसकी पीठ निशा की ओर है इसलिए यह वह देख नहीं पाती।) मैंने एक खतरे को रास्ते से हटाया है, और दूसरे को भी हटाना ही होगा। (एकाएक घूमकर हाथ में पिस्तौल घुमाने लगता है।)

निशा—(मुस्कुराती है) मुझे भी इसी तरीके से ?—

गोपाल—हाँ, लाचारी है।

निशा—उसके बाद की अपनी हालत सोचो।

गोपाल—तुम्हारे बाद यह पिस्तौल मेरे काम आ सकती है।

निशा—और किशोर ? किशोर क्या समझेगा ?

गोपाल—(सिर नीचा कर लेते हैं, हाथ स्थिर हो जाता है।) समझेगा तूने मेरी हत्या की है, फिर डर कर आत्मघात।

निशा—ओ ? और उस वसीयतनामे का क्या होगा जो किशोर के लिए है ?

गोपाल—कैसा वसीयतनामा ?

निशा—सेठ रामनारायण का।

(गोपाल बाबू के हाथ का प्याला गिरने को जाता है, या गिर जाता है। प्याला जल्दी से रखकर वह उठ खड़े होते हैं और दरवाजे की ओर जा रहे हैं। किशोर उनकी ओर ताज्जुब से देखता है। निशा मुस्करा रही है। पर किसी का ध्यान इधर नहीं।)

गोपाल—किशोर, यहाँ आओ (किशोर उठता है) तुमसे एक बात कहना है। तुमसे मैंने निशादेवी का परिचय करा दिया है।

निशा—किशोर, इधर आओ, तुमसे एक बात कहना बहुत जरूरी है।

गोपाल—किशोर !

निशा—किशोर !

गोपाल— { तुम इसको जानते हो ?—

निशा— { तुम्हें मालूम है ?—

(किशोर घबड़ाकर कभी इन्हें कभी उन्हें देख रहा है। बिल्कुल किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहा है।)

निशा—किशोर, तुम जानते हो तुम्हारी माँ—।

गोपाल—किशोर, इस स्त्री का मुझसे एक बात पर बहुत भारी झगड़ा हो रहा है और यह तुम्हें झूठी बातें कहकर मेरी जिन्दगी बिगाड़ना चाहती है। तुम इसकी बातें न सुनो।

किशोर—पिताजी, मैं आप लोगों की बातें नहीं समझ सकता।

(गोपाल किशोर को वहीं छोड़ आँखें लाल किए निशा की ओर बढ़ता है। उसकी मुट्ठियाँ बँधी हुई हैं।)

गोपाल—निशा, अपनी बातें हम फरिया लेंगे। तुम मुझसे बातें करो। किशोर, तुम जाओ यहाँ से। (किशोर जाना चाहता है, फिर झिझक कर ठिठक जाता है।) जाओ, मैं कहता हूँ, ईश्वर के लिए इस वक्त तुम यहाँ से जाओ।

(किशोर धीरे-धीरे बाहर चला जाता है। निशा कुटिल हास्य करती

है। गोपाल बाबू गुस्सा, घृणा, परिस्थिति की भयंकरता, अचानक छुटकारे के भाव आदि के कारण कुछ बोल नहीं सकते हैं। थोड़ी देर तक शान्ति रहती है।)

गोपाल—रानी, तुम्हें आज यह जगह छोड़ देना पड़ेगा।

निशा—क्यों ?

गोपाल—मैं कह रहा हूँ, आज, अभी, इसी वक्त यह शहर छोड़कर चली जाओ।

निशा—जाना ही होगा ?

गोपाल—हाँ, मैं कह रहा हूँ।

निशा—अगर न जाऊँ ?

गोपाल—अगर न जाओ ?—(आलमारी के पास जाकर दराज खींचता है और पिस्तौल निकालता है। उसकी पीठ निशा की ओर है इसलिए यह वह देख नहीं पाती।) मैंने एक खतरे को रास्ते से हटाया है, और दूसरे को भी हटाना ही होगा। (एकाएक घूमकर हाथ में पिस्तौल घुमाने लगता है।)

निशा—(मुस्कुराती है) मुझे भी इसी तरीके से ?—

गोपाल—हाँ, लाचारी है।

निशा—उसके बाद की अपनी हालत सोचो।

गोपाल—तुम्हारे बाद यह पिस्तौल मेरे काम आ सकती है।

निशा—और किशोर ? किशोर क्या समझेगा ?

गोपाल—(सिर नीचा कर लेते हैं, हाथ स्थिर हो जाता है।) समझेगा तूने मेरी हत्या की है, फिर डर कर आत्मघात।

निशा—ओ ? और उस वसीयतनामे का क्या होगा जो किशोर के लिए है ?

गोपाल—कैसा वसीयतनामा ?

निशा—सेठ रामनारायण का।

गोपाल—ओह! (कुर्सी पर बैठ—नहीं गिर—जाते हैं, पिस्तौल जमीन पर चली जाती है, हाथ लटक जाते हैं और बेहोशी-सी छा जाती है।) तो किशोर—?

निशा—हाँ, तुमने अब समझा। रामनारायण ने अपनी सारी जायदाद किशोर के नाम लिख दी है। वह वसीयतनामा मेरे पास है। (हाथ का हैंडबैग जाँघों पर रख लेती है)।

गोपाल—तुमने पहले क्यों नहीं बतलाया?

निशा—मौका नहीं था।

गोपाल—(ठठाकर हँसता है) किशोर, रानी, रामनारायण! रामनारायण, किशोर, रानी—और गोपाल! माननीय गोपाल-शरणगुप्त, श्रीमती रानी शरणगुप्त और किशोर! रानी हुई निशादेवी सुखी भी और किशोर हुए सेठ। हः हः हः।

(निशा आश्चर्य से उनकी ओर देखती है। वे उठ खड़े होते हैं, बाएँ हाथ में पिस्तौल उठा लेते हैं और दाहिने से झटक कर निशा का हाथ पकड़ लेते हैं। निशा जरा-सा चीख उठती है।)

निशा—छोड़ो मुझे।

गोपाल—वसीयतनामा दे दो।

निशा—नहीं दूँगी, दूर हटो, आह, हाथ टूटा, छोड़ो।

गोपाल—(निशा की कलाई मरोड़ते हैं, आँखें ऊपर को चढ़ी हुई हैं, चेहरा सुफेद हो रहा है) दो……।

निशा—श्यामा, श्यामा, बेयरा, दाई?

(श्यामा का दौड़ते हुए प्रवेश, आकर वह दरवाजे पर बिजली-मारी-सी ठमक कर बुत हो जाती है।

निशा—देखो, तुम्हारी नौकरानी खड़ी है।

गोपाल—श्यामी, इधर आओ। (श्यामा आती है) रानी, मैं इसके सामने तुम्हें……।

निशा—होश में आओ। स्थिति का ज्ञान है ?

गोपाल—खूब।

(हाथ जरा और मरोड देते हैं और पिस्तौल उसके माथे के पास अड़ा देते हैं। निशा दाहिने हाथ से उसकी नली पकड़ कर दूसरी ओर कर देती है।

निशा—श्यामा, तुम जाओ। जाओ यहाँ से। (श्यामा झिझकती है) जाओ—ओ।

(श्यामा चली जाती है। उसने दरवाजा लगा दिया है, पर वहाँ खड़ी देख रही है। थोड़ी-सी छीना-झपटी में ही बैग गोपाल के हाथ आ जाता है। जल्दी-जल्दी वसीयतनामा निकाल कर उस पर नज़र फेर जाते हैं। पढ़ते समय कुटिल मुस्कान उनके होठों के अगल-बगल दौड़ रही है।)

गोपाल—(पढ़ते हुए)—मेरी सारी जायदाद किशोर—(मन-ही-मन फिर जरा जोर से) हस्ताक्षर, रामनारायण और गवाह निशा देवी। (जोर से हँसते हैं।)

(निशा बैठी अपनी कलाई पकड़े, खूँख्वार पर असहायता भरी नज़रों से, उनकी ओर निहार रही है, जैसे बँधी बिल्ली को कुत्ते।)

गोपाल—(पुकारता हुआ) किशोर ? किशोर ? श्यामा ?

निशा—(उठ खड़ी होती है) क्या कर रहे हो ?

गोपाल—जो तुम करना चाहती थीं। किशोर को जानना ही होगा। किशोर ? (और भी जोर से) किशोर ? श्यामा—आ। (श्यामा आती है) किशोर को बुलाओ।

निशा—अब क्या करूँ ? हे ईश्वर ! गोपाल, गोपाल, मेरी ओर देखो। तुम क्या कर रहे हो ? सोचो, सोचो जरा।

गोपाल—क्यों ? कुछ गलती थोड़ा ही कर रहा हूँ। तुम भी यही चाहती थी, मैंने भी समझा, उसका जानना जरूरी था। उसे मालूम हो जायगा।

निशा—मैं—मैं कभी यह नहीं चाहती थी। मैं—मैं तुम्हें तंग कर रही थी। विश्वास मानो। किशोर मेरा लड़का है—उसकी भलाई मैं तुमसे कम नहीं चाहती। मैंने कभी नहीं चाहा उसे ये बातें मालूम हों।

गोपाल—ऐसा ही होगा। पर अब मैं तो चाहता हूँ, उसे ये बातें मालूम हों।

निशा—मैं तुम्हें तंग करना चाहती थी (वह सभी बातें बड़ी जल्दी-जल्दी कह रही है, कभी यह कहती है, कभी वह। वह उन्हें विश्वास दिलाना चाहती है कि वह जो कुछ भी कह रही है, सच है। कि उसकी नीयत वही थी जो वह कह रही है। हर घड़ी वह एक अच्छी, प्रभावोत्पादक बात की तलाश में है।) मुझे रुपयों की जरूरत थी—मैं तुमसे एक मोटी रकम वसूल करना चाहती थी—मैं तुम्हें धमका रही थी—मेरे आदमी ने हत्या की है—उसे पुलिस की आँखों से छिपा देने के लिए एक बड़ी रकम की ज़रूरत थी—ओह, गोपाल, मुझे गलत न समझो—किशोर मेरा है—उसका जीवन वर्बाद न करो।

गोपाल—(हँसते हैं) जीवन क्यों वर्बाद होगा उसका? दुनिया की बुराई देखकर उसकी आँखें खुल जायँगी।

निशा—तुमने उसे पहले धोखे में बन्द कर उसे पेट्रोल बनाकर समझा, वह निर्विघ्न है, अब बुराई की आँच दिखाकर उसे बुद्धिमान बना देना चाहते हो। अचानक की चोट उसके सारे आदर्शों को धराशायी कर उसे नारकीय कीड़ा बना देगी। ऊपर का आदमी बड़े जोरों से और बड़ी बुरी तरह नीचे गिरता है। दिमाग ठंडा करो।

गोपाल—हमें क्या? किशोर, रानी और रामनारायण।

ोपाल को क्या मतलब ? रानी, रामनारायण और किशोर ने ोपाल को बिगाड़ा है, गोपाल भी बदला लेगा।

निशा—किशोर को तुमने प्यार किया है कभी ?

गोपाल—हाँ, किया था कभी, जान से बढ़कर मानता था ासे, उसके जीवन, उसके चरित्र पर ही मेरा जीवन निर्भर था। ार अब मैं उसे घृणा करता हूँ।

निशा—क्यों ? अभी भी किशोर तो वही है ? वही देह, ाही चेहरा, वही आदर्शवाद उसका और वही उसका मन और ासकी आत्मा।

गोपाल—वही नहीं रहे अब। अब किशोर वही नहीं रह गया।

निशा—क्यों, क्या उसके रगों में खून उल्टी गति से दौड़ने लगा, या उसकी आँखों की जगह पर सींग निकल आए ? या उसका रंग ही बदल गया, कि उसकी आत्मा ही औंधी हो पड़ी ? उसमें परिवर्तन क्या आ गया ?

गोपाल—वह, तुम और रामनारायण। फिर पूछती हो, परिव्रर्तन क्या आ गया ? उसका खून मेरा खून नहीं।

निशा—उसका खून वही है जो अभी पाँच मिनट पहले था, जो उसमें २० बरसों से दौड़ रहा है। वह ज्यों का त्यों है। बदले हो तुम। कितने कमजोर, कितने भावुक, कितने प्रवृतियों के गुलाम हो तुम ? जब तक तुमने किशोर को अपने खून का समझा, प्यार किया, अभी सुना, उसमें तुम्हारा खून नहीं, उससे घृणा करने लगे। फिर किस मुँह से कहते हो, तुमने उसे प्यार किया है ? तुमने खुद को प्यार किया, उसे नहीं। तुम्हारे अन्दर वासना है, तुम्हारा प्रेम उसी वासना का अंग है और वह प्रेम तुम्हारी वासना को छोड़ और किसी से प्रेम नहीं करता। तुम समझते हो तुम किसी खास व्यक्ति से प्रेम करते हो। पर यह

तुम्हारी सबसे बड़ी भूल है, तुम खुद को प्रेम करते हो, अपनी वासना को प्रेम करते हो। बाहरी व्यक्ति केवल एक कारण होता है जो तुम्हारे उस प्रेम को उभाड़ देता है। क्षणभर के अन्दर के इस परिवर्तन का यही कारण है। अन्यथा, तुम्हारा किशोर या मेरा किशोर दो नहीं, किशोर एक है। परिवर्तन तुम्हारे या मेरे अन्दर आ गया है। और इसी परिवर्तन, अपनी भावुकता की इसी घृणामयी प्रवृत्ति के कारण तुम एक बाहरी व्यक्ति का, एक ऐसे जीव का, जिसका तुम्हारे साथ कोई सम्बन्ध नहीं, जीवन बर्बाद करना चाहते हो।

गोपाल—मैं तुम्हारे कारण उससे घृणा करता हूँ।

निशा—क्यों, मेरे कारण मुझसे घृणा करना चाहिए। क्या तुम्हारी विचारशक्ति यही कहती है जो तुम कर रहे हो? तुमने अपनी वासना को प्यार किया, मुझे खिलौना बनाया। मैंने अपनी वासना को प्यार किया, रामनारायण को खिलौना बनाया। किशोर को न तुमने बुलाया, न हमने, न नारायण ने। प्राणी-शास्त्र के नियम ने खामख्वाह उसे हमारे सर लाद दिया। जो कुछ इस पृथ्वी पर आया वह हम तीनों से भिन्न एक अलग जीव था, जो सृष्टि का एक अंग था। तुमने हमने मिलकर उसका नाम किशोर रखा, ताकि औरों से अलग करके हम उसे समझ सकें। पर क्या सच ही वह औरों से अलग कोई चीज़ था? नहीं। सब एक हैं, या सब एक दूसरे से भिन्न। किशोर, किशोर है और राम, राम। किशोर और राम में उतनाही फरक है जितना तुममें और रामनारायण में। तुमने उसे अपना समझा, यह तुम्हारी गलती थी। न तुमने उसे पैदा किया, न हमने, न नारायण ने। हमतो अपने में मस्त थे। प्रकृति को ज़रूरत थी, उसने अपनी चीज़ आप पैदा कर ली। फिर तुम्हारा कैसा, और मेरा कैसा?

(श्यामा आती है। दरवाजे पर आकर वह क्षण भर तक ठिठकी रहती है।)

गोपाल—(उसे देखकर) किशोर आ गया क्या? उसे कह दो, अभी मैं नहीं मिल सकता उससे।

श्यामा—वे बाहर गये हुए हैं।

(निशा छुटकारे की साँस लेती है। श्यामा बाहर जाती है।)

निशा—एक काम करोगे गोपाल? किशोर पर तुम सब प्रगट कर देना। पर यह काम दो घंटे बाद भी तो कर सकते हो? अभी साढ़े आठ बजे हैं, तुम थोड़ी देर के लिए मेरे डेरे पर आओ।

(गोपाल आनाकानी करता-सा मालूम होता है। फिर पिस्तौल और वसीयतनामा जेब में रखता है।)

हाँ, तुम पिस्तौल ले लो, वसीयत भी तुम्हारे पास है। मैं निहत्थी हूँ। मुझसे डरना क्या?

(निशा जल्दी-जल्दी अपनी साड़ी वगैरह ठीक कर लेती है, गोपालबाबू भी अपने कपड़े सँभाल लेते हैं। दोनों कमरे से बाहर जा रहे हैं। वैसे ही श्यामा आती है। जाते-जाते निशा कहती जाती है—'सभी सामान सँभाल दो जल्दी, किशोरबाबू के आने के पहले, गोपालबाबू कुछ देर कर लौटेंगे—' और वे बाहर हो जाते हैं। श्यामा आकर कुर्सियों को खींच कर ठीक जगह पर कर देती है और सभी छितर-वितर हुए सामान सँभाल कर रखने लगती है। वह बराबर कुछ सोच रही है।)

श्यामा—किशोरबाबू, मालिक और मालिक का घर। रोज— मैं तो कुछ समझ ही नहीं सकती।

(बिहारी आता है। हाथ में कागज का एक पुलिन्दा लिए हुए है। आकर पुलिन्दा आलमारी में रख देता है, और उसके पल्ले लगा देता है।

फिर धीरे-धीरे श्यामा के पास आता है। श्यामा मन लगाकर टेबुल झाड़ रही है, उसकी पीठ बिहारी की ओर है। बिहारी उसके कंधों पर हाथ रखता है।)

श्यामा—(छमक कर) मेरे हाथ न लगाओ।

बिहारी—तेरे नखरे देखने मैं नहीं आया। मेरी बातों का जवाब दो।

श्यामा—राजा के तेवर बदले हैं।

बिहारी—उड़ो मत हमसे। मेरी ओर देखो।

(श्यामा सर उठाकर देखती है। आँखें नाचने-नाचने हो रही हैं, ओठों और भौंहों पर दुष्टता खेल रही है।) मजाक नहीं, मेरी बातों का जवाब दो।

श्यामा—बोलो।

बिहारी—मैं तुम्हारी हरकतें बर्दास्त नहीं कर सकता। तुम और किशोर बाबू दोपहर में क्या कर रहे थे ?

श्यामा—ओ, आपको रश्क हो रहा है ?

बिहारी—दिल्लगी नहीं, मैंने कमरे के पास से गुजरते हुए तुम दोनों के हँसने की आवाज़ सुनी थी।

श्यामा—और तुम भी तो सोनियाँ के साथ परसों कुँएँ पर ठठोली कर रहे थे !

बिहारी—मैं कभी ठठोली नहीं कर रहा था। फिर, मेरी बात और है।

श्यामा—हाँ, तुम मर्द हो, इसलिए न ? और मैं औरत हूँ, इसलिए मुझे केवल तुम्हारी पूजा करनी चाहिए। इस गुमान में न रहना। तुम्हारे पास दिल है, चाहे जहाँ लगाओ। मैं भी अगर मन बहला लेती हूँ तो क्या करती हूँ ! फिर तुम्हारे पास है क्या ? तुम न मुझे गहने दोगे न अच्छी साड़ियाँ।

उल्टे, मेरे ही सर खाओगे। बड़े लोग इज्जत करते हैं तो मुझे खुशी मालूम होती है। फिर क्यों तुम्हारी सभी बातें मानूँ ?

बिहारी—श्यामा ? मैं तुम्हारी हत्या कर डालूँगा।

श्यामा—क्यों ? हत्या किस लिए ? मैं चाहूँ तो तुमसे शादी नहीं कर सकती हूँ, मेरी खुशी है। तुम मेरे किसी काम के नहीं। फिर भी तुमसे शादी कर रही हूँ-तुम्हारे कामों की कैफियत नहीं माँगती। और एक तुम हो, जो यह भी नहीं देख सकते, किसी के साथ दो घड़ी हँस बोल लूँ। आखिर इसमें बुरा क्या है ?

बिहारी—लोग तुमसे नहीं बोलते, तुमसे नहीं हँसते, वे तुम्हारी काया से बोलते हँसते हैं। तुम्हारी खूबसूरती बला है। और वह मेरी चीज है।

श्यामा—मेरी काया मेरी नहीं, मेरा दिल मेरा है, जिसे मैंने तुम्हें दिया। फिर शरीर की क्या पर्वाह करते हो ? क्या इसमें कुछ लग जाता है ? कहो, मुँह से बतियाने के बाद कुल्ले कर लिया करूँगी, ओंठों से मुस्कुराने के बाद साड़ी से पोंछ लूँगी।

बिहारी—बात बनाना तुम्हारी तरह मुझे नहीं आता। किशोर बाबू ने तुम्हें हाँकना खूब सिखा दिया है और तुम्हारी बहसों का जवाब नहीं दिया जा सकता। पर मैं कहता हूँ, तुम्हारी इन हरकतों को मैं नहीं बर्दास्त कर सकता, क्यों नहीं कर सकता यह बताना मेरी ताकत के बाहर है, मैं बेपढ़ा आदमी हूँ—लेकिन कहता हूँ, तुम्हें इनसे बाज आना पड़ेगा।

श्यामा—अच्छा, अच्छा। बहुत हुआ। अब जाओ, जरा किशोर बाबू का कमरा सजा आओ, बिछावन यूँ हीं पड़ा है, आएँगे तो वैसा पाकर हम पर बिगड़ेंगे।

विहारी—(जाते हुए) मेरी बात याद रखना। नहीं कचूमर निकाल दूंगा।

(श्यामा देखती है कोई नहीं आ रहा है तो जाकर धीरे से दरवाजे भिड़ा देती है। फिर आकर सोफे पर बैठ जाती है, 'तितलियों की अनोखी कहानियाँ' लेकर दाहिने पर बाँया पैर चढ़ाकर चित्र देखने लगती है। बड़े इत्मिनान से बैठी है वह। जैसे मकान की मालकिन नहीं, तो मेहमान तो ज़रूर है।

दरवाजा धीरे से खुलता है, किशोर दिखलाई पड़ता है। पैर दबाकर वह सोफे के पीछे आकर खड़ा हो जाता है। श्यामा किताव अवलोकन में मस्त है। उसे पता नहीं।)

किशोर—श्रीमती जी कौन-सी किताब देख रही हैं ?

(श्यामा अकबकाकर धड़फड़ाती उठ खड़ी होती है, जल्दी से किताव रखकर आँचल से टेवुल का कोना झाड़ने लगती है।)

किशोर—बहुत मन लगाकर काम कर रही हो, मालूम हो गया। अब बहुत नहीं, ज्यादा चमक जायगा तो आँखें चौंधिया जायँगी। एक ग्लास जरा पानी पिलाओ।

(श्यामा बाहर जाती है।

किशोर उसी सोफे पर बैठ जाता है और वही किताव उठाकर ठीक उसी जगह उलटता है जो पन्ना, श्यामा की उँगलियाँ पड़ी रहने के कारण, खुद आगे आ रहता है।)

किशोर—तितली। कितनी सुन्दर। इस तितली ने मुझे क्या से क्या बना दिया ? क्या मैं वही किशोर हूँ ? फिलासफी, आदर्श, नैतिकता, समाज और धर्म। पशु और मनुष्य। विचार, तर्कनाशक्ति। और यह भावुकता, यह प्रवृत्तियों का जोर। मैं कहाँ हूँ ? चार दिनों पहले कौन जानता था, किशोर यहाँ आ रहेगा ! पर किशोर यहाँ है। उसकी नैतिकता, उसके आदर्श,

उसके विचार उधर खींचते हैं, और यह भावुकता उसे उल्टी ओर ढकेले दे रही है। इसमें क्या रखा है? हाड़ और माँस का बना शरीर, इसमें क्या रखा है? हड्डी के एक ढाँचे पर माँस थोपा हुआ है, उसमें थोड़ा रंग मिला है और एक खास तरह की इसकी गढ़न है। यह थोड़े से स्थान और समय में अवस्थित है। हमारे पास अनुभवशक्ति है, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, हम देख सकते हैं। यदि ये नहीं होतीं, तो इसका अस्तित्व क्या था? शायद वे वास्तव में कोई चीजें नहीं। शायद हमसे बाहर वह है ही नहीं। हमारा मन उसे जैसा चाहता है देखता है। हम उसका रंग ही तो देख पाते हैं, आवाज़ ही तो सुन पाते हैं, स्पर्श ही तो अनुभव कर सकते हैं? अगर उसे देखें नहीं, उसे सुनें नहीं, उसे छुएँ नहीं, तो भी क्या वह वर्तमान रह सकती है। क्या वह भौतिक जगत की कोई चीज़ है? नहीं हमारी ज्ञानेन्द्रिय और कल्पना के सिवा उसका कोई अस्तित्व नहीं। फिर इस अवास्तविक चीज़ के लिए इतनी जलन क्यों? इतनी तड़पन क्यों? इसलिए न कि हमारे मन की ऐसी वासना है। पर मन पर तो मेरा वश है। मन का गुण है विचार। प्रवृत्ति उसका विकार है। मन की वासना प्रवृत्ति की चीज़ है। विचार से उसका नाश किया जा सकता है। विचार ही पशु से मनुष्य को अलग करता है। फिर हम प्रवृत्ति के अधीन क्यों होते हैं? फिर हमारे अन्दर यह जलन क्यों, यह तड़पन क्यों? मेरी विचार-शक्ति कहाँ हो गई? मैं इतना कमज़ोर क्यों हो रहा हूँ?

(श्यामा सुराही और ग्लास लेकर आती है और पानी ढालकर किशोर को देती है।

किशोर ग्लास लेकर थोड़ी देर तक साकी बनी श्यामा के चेहरे को गम्भीरतापूर्ण लोलुप दृष्टि से देखता है, जब श्यामा की आँखें शोखी से

बिहारी—(जाते हुए) मेरी बात याद रखना। नहीं कचूमर निकाल दूंगा।

(श्यामा देखती है कोई नहीं आ रहा है तो जाकर धीरे से दरवाजे भिड़ा देती है। फिर आकर सोफे पर बैठ जाती है, 'तितलियों की अनोखी कहानियाँ' लेकर दाहिने पर बाँया पैर चढ़ाकर चित्र देखने लगती है। बड़े इत्मिनान से बैठी है वह। जैसे मकान की मालकिन नहीं, तो मेहमान तो ज़रूर है।

दरवाजा धीरे से खुलता है, किशोर दिखलाई पड़ता है। पैर दबाकर वह सोफे के पीछे आकर खड़ा हो जाता है। श्यामा किताब अवलोकन में मस्त है। उसे पता नहीं।)

किशोर—श्रीमती जी कौन-सी किताब देख रही हैं ?

(श्यामा अकबकाकर धड़फड़ाती उठ खड़ी होती है, जल्दी से किताब रखकर आँचल से टेबुल का कोना झाड़ने लगती है।)

किशोर—बहुत मन लगाकर काम कर रही हो, मालूम हो गया। अब बहुत नहीं, ज्यादा चमक जायगा तो आँखें चौंधिया जायँगी। एक ग्लास जरा पानी पिलाओ।

(श्यामा बाहर जाती है।

किशोर उसी सोफे पर बैठ जाता है और वही किताब उठाकर ठीक उसी जगह उलटता है जो पन्ना, श्यामा की उँगलियाँ पड़ी रहने के कारण, खुद आगे आ रहता है।)

किशोर—तितली। कितनी सुन्दर। इस तितली ने मुझे क्या से क्या बना दिया ? क्या मैं वही किशोर हूँ ? फिलासफी, आदर्श, नैतिकता, समाज और धर्म। पशु और मनुष्य। विचार, तर्कनाशक्ति। और यह भावुकता, यह प्रवृत्तियों का जोर। मैं कहाँ हूँ ? चार दिनों पहले कौन जानता था, किशोर यहाँ आ

उसके विचार उधर खींचते हैं, और यह भावुकता उसे उल्टी ओर ढकेले दे रही है। इसमें क्या रखा है? हाड़ और माँस का बना शरीर, इसमें क्या रखा है? हड्डी के एक ढाँचे पर माँस थोपा हुआ है, उसमें थोड़ा रंग मिला है और एक खास तरह की इसकी गढ़न है। यह थोड़े से स्थान और समय में अवस्थित है। हमारे पास अनुभवशक्ति है, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, हम देख सकते हैं। यदि ये नहीं होतीं, तो इसका अस्तित्व क्या था? शायद वे वास्तव में कोई चीजें नहीं। शायद हमसे बाहर वह है ही नहीं। हमारा मन उसे जैसा चाहता है देखता है। हम उसका रंग ही तो देख पाते हैं, आवाज़ ही तो सुन पाते हैं, स्पर्श ही तो अनुभव कर सकते हैं? अगर उसे देखें नहीं, उसे सुनें नहीं, उसे छुएँ नहीं, तो भी क्या वह वर्तमान रह सकती है। क्या वह भौतिक जगत की कोई चीज़ है? नहीं हमारी ज्ञानेन्द्रिय और कल्पना के सिवा उसका कोई अस्तित्व नहीं। फिर इस अवास्तविक चीज़ के लिए इतनी जलन क्यों? इतनी तड़पन क्यों? इसलिए न कि हमारे मन की ऐसी वासना है। पर मन पर तो मेरा वश है। मन का गुण है विचार। प्रवृत्ति उसका विकार है। मन की वासना प्रवृत्ति की चीज़ है। विचार से उसका नाश किया जा सकता है। विचार ही पशु से मनुष्य को अलग करता है। फिर हम प्रवृत्ति के अधीन क्यों होते हैं? फिर हमारे अन्दर यह जलन क्यों, यह तड़पन क्यों? मेरी विचार-शक्ति कहाँ हो गई? मैं इतना कमजोर क्यों हो रहा हूँ?

(श्यामा सुराही और ग्लास लेकर आती है और पानी ढालकर किशोर को देती है।

किशोर ग्लास लेकर थोड़ी देर तक साकी बनी श्यामा के चेहरे को गम्भीरतापूर्ण लोलुप दृष्टि से देखता है, जब श्यामा की आँखें शोखी से

हँसने-हँसने हो रही हैं; फिर ग्लास मुँह में लगाकर घट-घट सब पानी पी जाता है।

हाथ का ग्लास श्यामा की ओर बढ़ाता है।)

श्यामा—और पिलाऊँ ?

किशोर—और पिलाओ, पिलाये जाओ।

(श्यामा पानी डालना चाहती है। वह ग्लास खींच लेता है।)

किशोर—वह नहीं।

श्यामा—तब ?

(किशोर उसकी आँखों में देखता है, अपने होठों को जरा बल दिए हुए श्यामा भी तबतक किशोर की आँखों में आँखें डाले है, पर ऐसे जैसे उसे कुछ सूझ नहीं रहा हो; फिर किशोर की आँखें गिर जाती हैं और श्यामा की आँखें गिर जाती हैं। बाहर से कोई पुकार रहा है—'श्यामा, श्यामी!' श्यामी सुराही और ग्लास लेती है और 'बिहारी पुकार रहा है, वह जान मार देगा मेरी' कहकर जल्दी-जल्दी चली जाती है। किशोर फिर किताब उलटने लगता है।)

किशोर—और इस बिहारी नाम से मुझे चिढ़ क्यों है ? बिहारी शब्द में तो कुछ नहीं, पर बिहारी कहने से हमारे मन के आगे एक एसोसियेसन आता है, एक भाव घूम जाता है, एक खास आदमी का, जिसे हम कहते हैं बिहारी। और इस बिहारी ने हमारा क्या बिगाड़ा ? उसने मुझे मारा नहीं, मेरे शरीर को तकलीफ नहीं दी, मेरे मन को नहीं छूआ। फिर भी उसके नाम पर जलन पैदा होती है, हृदय में दर्द होता है।—अच्छा, इस दिल के दर्द का क्या कारण है ? क्या सच ही कलेजे में किसी तरह की चोट लगती है और उसकी खबर हमारी नसें हमारे दिमाग के सेरे ब्रम में ले जाती हैं और तब हमारा 'अहम्' इसका ज्ञान प्राप्त करता है ? नहीं। इसका कारण

केवल यही है कि प्रेम की बात सोचते ही हमारे अन्दर विचारों का एक संयोजन होता है। ज़माने से हम सुनते आए हैं—ज़ालिम ने दिल के टुकड़े कर दिए, और दिल बिस्मिल हो रहा है और दिल चाक़ हो गया है—और जभी हम यह बातें सोचते हैं, हमारा दिमाग हमारे दिल की ओर दौड़ जाता है और हमें दिल में दर्द मालूम होता है। यह हमारी कल्पना के कारण है। यही दर्द हम चाहते तो अपनी जाँघों और टेहुनी के जोड़ों में अनुभव कर सकते थे। पर हम तो आदी हो गए हैं दिल में दर्द अनुभव करने के। और बिहारी का नाम सुनकर हमारे दिल में दर्द होता है। यह केवल एक शरीर के लिए जो अवास्तविक है। और हमारी भावुकता इसका कारण है, हमारी प्रवृत्तियाँ इसकी जड़ में हैं, जिन प्रवृत्तियों के कारण हम पशु हैं और जिन्हें हमारा विचार दबा सकता है। कैसी विडंबना है? (थोड़ी देर तक विचार करता हुआ किशोर बैठा रहता है। फिर घड़ी की ओर दृष्टि उठाकर देखता है—९-२०। वह जँभाई लेता हुआ उठ खड़ा होता है।) ओह, बड़ी नींद आ रही है (किताब रख देता है) बहुत समय हो गया। (स्विच ऑफ कर देता है, बत्तियाँ गुल हो जाती हैं) अब सोने जाना चाहिए।

(अंधेरे में वह धीरे-धीरे बाहर हो जाता है।

थोड़ी देर तक शान्ति छाई रहती है। घड़ी एक बार टन करके टिक-टिक आगे बढ़ चलती है। अंधेरे में एक आदमी का आना। उसके पैर लड़खड़ा रहे हैं। स्विच के पास पहुँचते-पहुँचते उसने एक कुर्सी उलट दी है और टेबुल पर से कई किताबें ज़मीन पर गिरा छोड़ी हैं। बत्तियाँ जल उठती हैं। गोपाल बाबू। कपड़े बिखरे-बिखरे, पैर डगमग, चेहरा भारी, आँखें लाल और ज़बान लड़खड़ाती हुई।

टेबुल के पास पहुँच कर वे झुककर कुर्सी को सीधी करने की कोशिश

करते हैं, फिर उलट पड़ती है वह। हैरान-से होकर सेट्टी पर गिर पड़ते हैं।)

गोपाल—रानी, रानी, रानी (ज़बान हमेशा लड़खड़ा रही है, इसलिए थमक-थमक कर बोल रहे हैं।) किशोर और रामनारायण और बाबू गोपाल गुप्ता। वसीयतनामा और जहन्नुम। दुनिया इधर और दुनिया उधर। किशोर, किशोर और रानी, निस्सी। बीच में गोपाल बाबू टिली लिली। (अपने को खुद अंगूठा दिखाते हैं।)

(श्यामा आकर एक चिट्ठी देती है। गोपाल बाबू चिट्ठी ले लेते हैं, पर तुरन्त वह ज़मीन पर गिर पड़ती है। श्यामा उसे उठाने के लिए झुकती है।)

गोपाल—और ये आई श्यामी। श्यामी, जानती हो तुम कौन हो? मेरा मतलब, मैं कौन हूँ, मेरा मतलब किशोर कौन है? और रानी? (श्यामा आश्चर्य, कुतूहल और एक प्रकार की आशंका से उनकी ओर ताकती है।) तू श्यामी, मेरी रानी। और किशोर कोई नहीं। रानी उसकी माँ और रामनारायण—। उहूँ, मैं खून कर डालूँगा। तू श्यामी, मेरी रानी। इधर आ।

(श्यामा का हाथ पकड़ कर सेट्टी पर खींच लेते हैं। वह धम्म से बगल में गिर पड़ती है। उठने की कोशिश करती है, पर उसका हाथ पकड़े हुए हैं। वह थोड़ा दूर खिसक कर बैठती है।)

श्यामा—छोड़ दीजिए मालिक मुझे। मैं डाक्टर बुला लाती हूँ।

गोपाल—डाक्टर नहीं—किशोर को बुला लाओ। नहीं, तुम मेरी छाती से लग जाओ।

(श्यामा हाथ झिटकोर कर उठ नहीं होती है।)

गोपाल—बुरा मान गई क्या? मोआफ करना मुझे। मेरा होश ठिकाने नहीं। माफ करना मुझे। जानती हो, किसने मेरा

दिमाग बिगाड़ा है ? किशोर ने। रानी ने। रामनारायण ने। यह देखो। (पौकेट में हाथ डालकर वसीयतनामा निकाल कर उसे दिखाते हैं।) ह:, रानी लूट लेने के फिराक में थी, मैं कैसा बचा लाया। ह: ह: ह:। मुझे बेवकूफ समझ लिया था। और मैंने खूब शराब पी है, बहुत। तुम घबड़ा रही हो ? माफ करना मुझे। मैंने शराब पी है। हाँ, तुम अलग रहो। तुमको देखकर तुम्हें चिपका लेने का मन होता है। पर नहीं, मुझे होश में आने दो। यह लो। यह वसीयतनामा तुम किशोर को दे देना। अभी नहीं, कल, परसों, कभी भी। पर अभी नहीं।

(श्यामा किंकर्तव्यविमूढ़ हो रही है। उसने वसीयतनामा ले लिया है। वह समझ नहीं सकती क्या करे। गोपाल उससे जाने का इशारा करते हैं। वह धीरे-धीरे बाहर हो जाती है। गोपालबाबू सेट्टी पर पसर कर कुछ जगे कुछ सोये-से पड़े बीच-बीच में बड़बड़ा रहे हैं।

बाहर की ओर के दरवाजे से निशा का आना। आकर वह सोफे के पास क्षणभर तक खड़ी रहकर गोपालबाबू को परीक्षा की दृष्टि से देखती है। फिर एक कुर्सी खींच कर पास ही बैठ जाती है।)

निशा—गोपाल, गोपाल।

गोपाल—कौन किशोर ? तुम—।

निशा—मैं हूँ, रानी। आँखें खोलो।

गोपाल—(हाथ के बल थोड़ा उठकर देखते हुए) ऊँह ?

निशा—तुमने शराब कहाँ से पी ?

गोपाल—रानी, शराब ? मैंने शराब नहीं पी। अहँ, देखो, मैं बिल्कुल शराब नहीं पिए हुए हूँ। एकदम ठीक हूँ।

निशा—मैं पूछती हूँ, शराब कहाँ पाए ?

गोपाल—बहुत पिया है, और है तो लाओ, पीलूँ।

निशा—अच्छा, लाती हूँ।

गोपाल—साकी ! पिलादे शराब ।

निशा—वसीयतनामा कहाँ है ?

गोपाल—उड़ गया, टिलीलिली (अंगूठा दिखाते हैं)

निशा—वसीयतनामा कहाँ है ?

गोपाल—ले गई, चिड़िया ले गई, मेरी साकी ले गई ।

निशा—वसीयतनामा कहाँ है ?

गोपाल—श्यामा को दे दिया ।

निशा—हैं ?

गोपाल—अब ? ताकती रहो तुम ।

निशा—अब तक वह किशोर को मिल गया होगा । कुछ समझते हो ?

गोपाल—बहुत । मैं यही तो चाहता था । तुम्हारा लड़का रामनारायण का लड़का अब तक बर्बाद हो चुका होगा ।

निशा—गोपाल (चिल्लाती है) गोपाल, वसीयतनामा कहाँ है ? तुमने क्यों दे दिया ? ओह, मेरा किशोर, मेरा लड़का ।

गोपाल—तुम्हारा लड़का ? किशोर ? लूटो मजे अब ।

निशा—बताओ, यह तुमने क्या किया ? हे भगवान ! मैं कहाँ जाऊँ ? क्या करूँ ? किशोर ! किशोर !! चाण्डाल ।

गोपाल—हः, हः, हः, हः । तुम्हारा लड़का ।

निशा—गोपाल ।

गोपाल—बर्बाद कर दिया न तेरे लड़के को ?

(निशा के हाथों दावात आती है । वह खूब जोर से दावात गोपाल के सर में दे मारती है । गोपाल चीख उठता है, दावात फूट गई है और माथा फटकर खून निकल आया है । चेहरे और कपड़ों पर स्याही और खून के छींटे भर गये हैं ।

निशा घबड़ाकर उठती है । गोपाल कुछ विचित्र मुद्रा से, कुछ आश्चर्य,

कुछ परिस्थिति की अचानकता की वजह से चकित नेत्रों से निशा की ओर देख रहे हैं। निशा घबड़ाकर क्षण भर तक मूर्ति बनी रहती है। फिर उठकर गोपाल का सर सँभाल लेती है।)

निशा—गोपाल, गोपाल, इधर देखो। (अपने आँचल से खून पोंछती है। पर रक्त का प्रवाह रुकता नहीं। घबड़ा कर पुकारती है) श्यामा, श्यामा। कोई है? दरबान, चपरासी, वेयरा?

(विहारी आता है।)

निशा—पानी लाओ (विहारी जल्दी से पानी लाकर देता है।) जाओ, डाक्टर को जल्दी बुला लाओ। पास में कोई डाक्टर है! जल्दी आना।

(विहारी दौड़ता हुआ चला जाता है।) ओह, यह क्या किया? (पानी से कपड़ा भिंगोकर घाव को धो रही है। गोपाल बाबू चुपचाप आँखें मूँदे पड़े हुए हैं।)

निशा—गोपाल!

गोपाल—(आँख खोलकर) रानी!

निशा—माफ करना मुझे। मैं, मैं अपने को रोक नहीं सकी।

गोपाल—वसीयतनामा किसी तरह वापस ले आओ। श्यामा को मैंने कहा था, कि वह आज उसे नहीं दे।

निशा—ईश्वर करे कि उसने न दिया हो। मैं वापस ले लूँगी। तुम माफ करना। देखो, तुमने कैसी भूल की है?

गोपाल—मैं अपने को रोक नहीं सका रानी। मेरे लिए दुनिया सूनी हो गई। सारे संसार में मुझे आग, घृणा, पाप के सिवा और कुछ दिखाई नहीं पड़ा। किशोर मेरा था, मैंने उसे अपना समझा। तुम गई, इससे बड़ी चोट किसी आदमी के लिए, किसी भी आदमी के मान के लिए, नहीं हो सकती थी।

पर, मैंने सब बर्दाश्त किया, तुम्हें भी माफ किया। क्यों? इसलिए न कि मैं अच्छी तरह आदमी की कमजोरियों को समझता था। आदमी को विचार है, और इन विचारों पर ही आदमी को समझ सकते हैं। वासना आदमी नहीं, प्रवृत्ति आदमी नहीं, भावुकता आदमी नहीं। नैतिकता बुरी चीज है, समाज एक विडम्बना है, धर्म धोखा है और पाप-पुण्य की बातें जाल हैं, हौव्वा हैं। आदमी का चरित्र आदमी के विचार हैं, वे काम नहीं जो किसी दूसरी शक्ति के वश होकर वह करता है, चाहे वह ईश्वर हो, परिस्थितियाँ हों, भावुकता हो या प्रवृत्तियाँ हों। पर किशोर मेरा नहीं, यह सहना मेरी ताकत के बाहर था। मैं भूल गया।

निशा—मैंने तुम्हें समझा है गोपाल और तुम्हारे सम्बन्ध में कभी भूल नहीं कर सकती। मैं जानती हूँ, तुम क्या हो? मैंने तुम्हारी फिलासफी समझी है और समाज, संसार और धर्म की धोखे की टट्टी को भी अच्छी तरह पहचान गई हूँ। यह नैतिकता का जाल संसार के हर आदमी के पतन का कारण है। लेकिन किशोर को इन्होंने जिस जंजीर से जकड़ रखा है उसे धीरे-धीरे छुड़ाना होगा। एकाएक वैसा करने से उसका जीवन ही टूट जायगा और वह वह जायगा।

(विहारी और डाक्टर आता है। डाक्टर गोपाल की चोट देखता है, फिर पॉकेट से टिंकचर आयोडिन निकालकर पट्टी कर देता है। पीने के लिए एक दवा देता है और गोपाल बाबू को सोने का आदेश करता है। विहारी और निशा की मदद से गोपाल बाबू बाहर ले जाये जाते हैं। डाक्टर भी चला जाता है। निशा और विहारी तुरत लौटते हैं।)

निशा—विहारी, श्यामा क्या अबतक नहीं आई?

बिहारी—नहीं सरकार, न जाने क्यों, अबतक वह लौट नहीं सकी।

निशा—मैं यहीं उसकी राह देखती हूँ। उसके आने से मुझे खबर करो।

बिहारी—बहुत अच्छा सरकार। लड़की बड़ी शोख है। भला इत्ती रात गए कोई फिरता रहता है?

निशा—सो मत जाना। जाओ।

बिहारी—कभी नहीं सरकार। (बिहारी जा रहा है।)

निशा—ओह, जाने क्या किया है उसने। (बिहारी को पुकार कर) बिहारी!

बिहारी—(फिर कर देखता है)—'क्या?'

निशा—देखो, किशोरबाबू क्या कर रहे हैं? (बिहारी जाता है। निशा टेबुल के पास इधर से उधर घूम रही है।) ओह, शायद उसने वसीयतनामा पा लिया हो! वह पागल हो गया होगा। पर नहीं, शायद उसे मिला नहीं। नहीं तो कोई काण्ड अबतक जरूर उठ खड़ा होता। हाँ, गोपाल ने कहा, उसने श्यामा को कहा है, वह आज न दे।

बिहारी—(आकर) सरकार, किशोरबाबू लेटे हुए किताब पढ़ रहे हैं।

निशा—किताब पढ़ रहे हैं, या सो गए?

बिहारी—नहीं, सो नहीं गए। उनकी छाती पर किताब है और टेबुल-लैम्प उन्होंने पास ही रख छोड़ा है। पर पढ़ नहीं रहे हैं।

निशा—हूँ; जाओ। याद रखना। जैसे ही श्यामा आवे, खबर देना। देर न हो पावे। (बिहारी कुतूहल की नज़रों से देखता और सर हिलाता हुआ जाता है।) वह सोया नहीं, शायद सोच

रहा हो। गम्भीर लड़का है, पागल नहीं हो उठा। द्वन्द्व उसके अन्दर-अन्दर चल रहा हो। ओह, क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? गोपाल ने बदला लिया। उसने जरा-सा सोचा नहीं, जरा-सा समझा नहीं। होनेवाला शायद हो चुका। तभी वह इतना शान्त है, पड़ा-पड़ा सोच रहा है। शायद स्थिति को वह समझ नहीं सक रहा। पर नहीं, शायद उसने पाया नहीं, श्यामा ने दिया नहीं होगा। अच्छा, आखिर गोपाल ने श्यामा को क्यों दिया? उसका श्यामा से क्या सम्बन्ध है? ओह, कितना कमजोर है यह। कहीं यह बात सच हो। ....अगर हो ही तो क्या? हमने भी तो यही किया। वासना है, उसे बाहर निकाल देना ही होगा। नहीं तो वह तुम्हें भी खतम करेगी। तुम उसकी पर्वाह न करो, उसे दबाने की कोशिश न करो, फिर प्रवृत्ति ने जितनी वासना अपना काम साधने के लिए तुम्हें दी है, उतनी तुम्हारे से बाहर आ रहेगी। तुम ज्यों-के-त्यों रह जाओगे। हाँ, यह सब कुछ ठीक है। फिर भी यह प्रवृत्तियाँ? प्रेम और घृणा। डाह और ईर्ष्या? हृदय की जलन, दिल की तपन। अगर यह ईर्ष्या नहीं होती, प्रेम और घृणा नहीं होती तो इतनी झंझटें क्यों होतीं? ये प्रवृत्तियाँ आदमी के अन्दर हैं और ये उसकी विचारशक्ति को दबा बैठती हैं, उसकी भावुकता के नीचे उसकी तर्कनाशक्ति का कचूमर निकल जाता है और आदमी पशु हो जाता है। इसीसे तो इतना डर है। नहीं तो किशोर के लिए मैं क्यों घबड़ाती? उसका संसार झूठे ख्यालों का बना है, भावना से भरे हुए ख्यालों का। चोट लगेगी उसकी भावुकता को और उसकी प्रवृत्तियाँ नष्ट कर देंगी उसकी विचारशील आत्मा को। और वह नष्ट हो जायगा। ओह, क्या करूँ?

(थककर सोफे पर बैठ जाती है और माथे पर हाथ रखकर ओठंग कर सोच रही है।

पीछे के दरवाजे पर किसी की आवाज सुनाई देती है। निशा उधर देखती है। बिहारी कह रहा है—'तुरत चलो, वे तुम्हारा आसरा देखती बैठी हैं।' श्यामा जवाब देती है—'तुरत आई। जरा-सा किशोर बाबू के यहाँ से होकर आई।')

निशा—श्यामा, श्यामा, मत जाना वहाँ। यहाँ आओ, जल्दी।

(बिहारी दरवाजा ढकेल कर आता है।)

बिहारी—सरकार, वह किशोरबाबू की ओर भाग गई।

निशा—किशोरबाबू की ओर गई। दौड़ो, उसे वहाँ न जाने दो। जल्दी जाओ।

(बिहारी के पीछे खुद लपकती बाहर जाती है।

थोड़ी देर के अन्दर ही श्यामा और निशा आती हैं। निशा कटे-पेड़-सी सोफे पर गिर जाती है। श्यामा खड़ी है।)

निशा—घड़ी भर के लिए सब सत्यानाश हो गया। तू ने मेरी बात सुनी नहीं क्यों ?

श्यामा—वे सोए हुए थे शायद, मैं चुपके से टेबुल पर रख आई हूँ।

निशा—जाओ, वहीं खड़ी रहना। मौका मिले तो निकाल लाना। पढ़ नहीं पावें वे। समझीं ?

श्यामा—अच्छा।

(श्यामा जाती है। निशा पड़ी हुई है। व्याकुलता उसके चेहरे पर खेल रही है। चेहरा सुफेद हो रहा है। जैसे वह कुछ सोच भी नहीं सक रही हो।

समय बीत रहा है। श्यामा आती है।)

श्यामा—आपने मुझे पुकारा ?

निशा—नहीं, तुम्हें भ्रम हुआ है। मौका नहीं मिला ?

श्यामा—वे सोए हुए हैं, शायद उनकी नज़र नहीं पड़ी उस पर। पर इसी बीच उन्होंने दरवाजा बन्द कर लिया है।

निशा—अँ ? तब जरूर पढ़ लिया होगा ? ओह !

श्यामा—नहीं, वह ज्यों का त्यों टेबुल पर पड़ा है, दरवाजे के शीशे होकर मैंने देखा है। उनकी आदत है, जब उन्हें नींद आने लगती है तो उठकर दरवाजा लगा दिया करते हैं। लैम्प जलता छोड़ दिया है।

निशा—जाकर तुम देखती रहो।

(श्यामा जाना चाहती है।)

निशा—नहीं, एक काम करो। बिहारी को बोल दो, किशोर जैसे ही उठे उसे यहाँ भेज दे। उसे पलंग पर करवट लेते ही देखकर उसे पुकारे, कि उसे टेबुल देखने का मौका न मिले। समझी न ? और तुम कहकर यहाँ आओ।

(श्यामा जाती है और शीघ्र ही लौट आती है।)

श्यामा—मैंने उसे समझा दिया है। वह काम का पक्का आदमी है। कभी वह कागज न पढ़ने दे, जो टेबुल पर पड़ा है ऐसा मैंने समझा दिया है ! उनके आते ही यहाँ भेज देगा।

निशा—(इशारा करती है) बैठो।

(श्यामा सेट्टी पर बैठ जाती है। निशा उसकी ओर गौर से थोड़ी देर तक देखती रहती है।)

निशा—श्यामा, तुमने वसीयतनामा पढ़ लिया है ?

श्यामा—हाँ।

निशा—तुम यह जानती हो कि उसमें क्या लिखा है ?

श्यामा—कोई खास बात नहीं। यही कि किशोरबाबू को

एक बड़ी जायदाद मिलनेवाली है जो किन्हीं सेठ साहब ने दिया है।

निशा—इसके अलावे और कुछ समझती हो ?

श्यामा—नहीं। उसमें केवल यही लिखा है। पर मैं यह नहीं समझ पाती, उसे किशोरबाबू के हाथों नहीं पड़ने देने का क्या मतलब है ?

निशा—क्या तुम मतलब नहीं समझती श्यामा ?

श्यामा—नहीं तो।

निशा—तुम झूठ बोलती हो। जानती हो, इसका क्या अर्थ होता है ?

श्यामा—क्या अर्थ होता है ?

निशा—तुम जानती हो, मैं कौन हूँ ?

श्यामा—हाँ, किशोर की माँ।

निशा—(चौंक पड़ती है।) तुम क्या कहती हो श्यामा ? किशोर की माँ मर गई।

श्यामा—लोग ऐसा ही समझते हैं।

निशा—श्यामा, बताओ, इसके क्या अर्थ हैं ?

श्यामा—कोई खास बात नहीं। मेरे पिता के मर जाने के बाद उनकी पेटी से मुझे एक फोटो मिला—।

निशा—ग्रूप फोटो ग्राफ—?

श्यामा—गोपालबाबू और एक महिला कुर्सियों पर बैठे हैं—।

निशा—महिला की गोद में एक छोटा बच्चा है—?

श्यामा—मेरे बूढ़े पिता दोनों के पीछे खड़े हैं—।

निशा—और वह महिला मैं हूँ—?

श्यामा—उसकी पीठ पर लिखा है—'श्रीमती रानीशरण गुप्ता को गोपाल का सप्रेम उपहार।'

निशा—ओह। तब ? क्या तुम जानती थीं कि मैं जिन्दा हूँ, या मेरा क्या हुआ ? या यह बात तुम्हें आज मालूम हुई ? वह महिला तो मर चुकी थी ?

श्यामा—लोग ऐसा ही समझते थे—।

निशा—और तुम जानती थीं ?

श्यामा—कि किशोर की माँ जिन्दा हैं। मेरे पिता ने मरते वक्त कहा था। मरने के समय उनकी मति खराब हो गई थी, और उन्हें वात हो गया था। वे अंट-संट बकते-बकते मरे थे।

निशा—और उसकी बातों का मतलब था, किशोर की माँ जिन्दा है ?

श्यामा—वे किसी के साथ भाग गई हैं, जिसकी वजह से मालिक को बड़ी तकलीफ है और मेरे पिताजी भी उसी दुःख से पीड़ित हैं।

निशा—और तब तुमने मुझे देखा।

श्यामा—पहले मैंने कुछ नहीं समझा। अचानक याद आई। मैंने फोटो निकाला, आपका चेहरा बहुत-कुछ मिलता हुआ मालूम हुआ। खासकर ललाट पर का तिकोना दाग कभी धोखा नहीं दे सकता था।

(निशा का हाथ आपसे आप उसके माथे पर चला जाता है और अपने दाग को वह ढँक लेती है।)

श्यामा—छिपाने की कोई जरूरत नहीं। अभी कोई और नहीं देख रहा है। वह अब तक करीब-करीब मिट चुका है। पर पहचानी आँखें उसे भूल नहीं सकतीं।

निशा—और किशोर—?

श्यामा—यह बात नहीं जानते। मैंने बहुत बेर चाह कर भी उनसे नहीं कहा। पर अब इसे और नहीं दबा सक रही हूँ। कई दिनों से हलचल मची है। मैं अब तक कह दिए होती।

निशा—श्यामा !

श्यामा—घबराइए नहीं, इससे उनकी कोई हानि नहीं होगी; बल्कि फायदा ही होगा। आप उन्हें धोखे में रखना चाहती हैं। पर वे समझदार हैं।

निशा—उसकी जिन्दगी बिगड़ जायगी, श्यामा।

श्यामा—गलत ख्याल है। आपने उन्हें बहुत ज्यादा विचार-शील बना दिया है, उन्हें आदर्शों की दुनियाँ में बाँध दिया है, नैतिकता के ख्यालों से जकड़ दिया है। इससे छुटकारा देना आवश्यक है। अन्यथा कहीं अचानक यह बात प्रगट हुई, या उन्होंने देखा, दुनिया क्या है तो—।

निशा—उसका नाश हो जायगा। इसीलिए तो प्रगट नहीं होने देना चाहती। मुझे ताज्जुब है कि सब बातें इतने दिनों से जानते हुए भी तुम इतना शान्त कैसे रह सकी।

श्यामा—मैं विचारशील नहीं और न भावुक हूँ। मेरे अन्दर जो कुछ भी है उस पर मैंने विचार नहीं किया। किशोर बाबू की संगति में रह कर बहुत फिलासफी सुनी और कुछ गुनी भी। मालिक ने हमें मेहरबानी करके थोड़ा पढ़ने लायक भी बना दिया। इस घर में मालिक और किशोर बाबू के बीच हमेशा बात ही फिलासफी की होती है, प्रायः वे प्रकृति, भावुकता और विचार को लेकर बहसें किया करते हैं। उन्होंने विचारों को आदमी समझा है और प्रवृतियों का नाश चाहते हैं, इसलिए दिन-रात इसी पर विचार किया करते हैं। मैंने कभी नहीं सोचा, विचार आदमी है या प्रकृति। जो है सो है। हम क्यों इसकी फिक्र करें ?

निशा—मैं नहीं जानती थी, गोपाल बाबू की संगति ही ऐसी है कि उसके आसपास रहने वाला हर तिनका फिलासफर हो

उठता है। तुम्हारा कहना ठीक है। हम जितना प्रवृत्तियों को दबाने की कोशिश करते हैं उतनाही वे हमें दबाती हैं। फिर भी, किशोर तो वैसा ही बना है! उसे बचाना ही होगा, चाहे जैसे हो।

(बाहर से बिहारी की आवाज़ सुनाई पड़ती है—'बचाओ, बचाओ, ओह, मालिक, मालिक, छोड़ दीजिए मुझे।'

निशा और श्यामा दरवाजे की ओर लपकती हैं। किशोर और बिहारी अन्दर आते हैं। किशोर ने दोनों हाथों से बिहारी का गला पकड़ रखा है। बिहारी अपने को छुड़ाने की जी-जान से कोशिश कर रहा है। पर किशोर छोड़ता नहीं।

श्यामा और निशा देखती है, किशोर सोया हुआ है। उसकी आँखों की पुतली ऊपर चढ़ी हैं और उसे अपना ज्ञान नहीं। यह Somnambulism है।

श्यामा किशोर के हाथ पकड़कर छुड़ाने की कोशिश करती है, निशा उसके बाल पकड़कर खींचती है। किशोर अचानक जग जाता है। वह ताज्जुब की नज़रों से अपने चारो ओर देखने लगता है।

श्यामा उसके पास जाती है। किशोर उसका हाथ पकड़कर अपने पास खींच लेता है। सब आश्चर्य से उसकी ओर देख रहे हैं।)

किशोर—श्यामी, तुम मुझे छोड़ कर नहीं जा सकती।

बिहारी—(निशा की ओर देखता है, फिर किशोर की ओर, फिर श्यामा को निर्लिप्त मुद्रा से देखता है।) बाबू!

श्यामा—बिहारी तुम चुप रहो अभी।

बिहारी—श्यामी ?

निशा—बिहारी, तुम गोपाल बाबू को बुलाओ।

बिहारी—मैं कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ। मुझे श्यामी ने यह कागज़ उठा लाने को कहा था, कि किशोर बाबू इसे पढ़ न

सकें। किशोर बाबू पलंग पर से उठ खड़े हुए और एक ओर को चल पड़े। मैंने कागज जल्दी से उठा लिया। मैं इधर आ रहा था तो देखा, ये मेरे सोने की जगह की ओर जा रहे हैं। मुझे आश्चर्य हुआ, इनके पीछे-पीछे गया। मेरी खाट के पास पहुँच कर इन्होंने तो मेरी गर्दन पकड़ ली। बापरे बाप, मेरी तो जान निकल गई थी। पंजा है?

निशा—तुम जाओ, गोपाल बाबू को जगा लाओ।

(बिहारी बड़बड़ाता हुआ जाता है।)

श्यामा—किशोर बाबू?

किशोर—मैं ठीक कह रहा हूँ श्यामी। तुम मेरी हो। तुम मुझे छोड़कर कहीं नहीं जा सकती। नहीं जा सकती, नहीं जा सकती।

श्यामा—होश में आइए किशोरबाबू।

किशोर—अं? मैं ठीक हूँ। (किशोर देखता है, निशा वसीयत नामा फाड़ने जा रही है। रोक देता है) आप तकलीफ न करें। वह मेरी चीज है। मैंने उसे पढ़ लिया है। मेरी जायदाद यों न बर्बाद करें।

निशा—ऐं? (वह सोफे पर गिर-सी पड़ती है।)

किशोर—घबड़ाती क्यों हैं? इसमें तो कोई खास बात नहीं। मुझे मालूम है कि आप मेरी माँ हैं। मैंने आपकी सभी बातें दरवाजे के पास से सुन ली थीं जब पिताजी शराब पीकर यहाँ बक रहे थे।

निशा—किशोर?

किशोर—न, मुझे कुछ नहीं हुआ। मैं बिल्कुल ठीक हूँ। मेरी दुनिया बिगड़ी नहीं। मैं ज्यों-का-त्यों हूँ। घड़ी भर पहले तक मैं आदर्शों और नैतिकता के झूठे जाल में जकड़ा हुआ था। पर

अब मैं उन्हें कुछ नहीं समझता। वह इमारत टूट चुकी है। मेरे सपने धूल में मिल गए हैं।

(गोपाल बाबू आते हैं, श्यामा का हाथ पकड़े हुए किशोर को देखते हैं, और देखते हैं सोफे पर बेहोश-सी पड़ी निशा को, जिसके हाथ में वसीयतनामा गिरने-गिरने-सा अटका है।)

गोपाल—मैं कुछ समझ नहीं सक रहा हूँ।

किशोर—समझने की कोई खास बात नहीं पिता जी। निशादेवी मेरी माँ हैं और सेठ रामनारायण—।

गोपाल—किशोर ? (वे श्यामा की ओर देखते हैं।)

किशोर—ओ, श्यामा से आप डर रहे हैं। वह अब मेरी स्त्री है। आप आश्चर्य न करें। मैंने उसे प्रेम किया है और मैं उसे छोड़कर रह नहीं सकता। मेरी धर्मपत्नी को मेरी सभी बातें मालूम रहना चाहिए। हाँ, तो सेठ रामनारायण मेरे पिता हैं।

गोपाल— } किशोर ?
निशा— } पागल हुए हो क्या ?

किशोर—सच्ची बातें तीखी हो सकती हैं, बुरी नहीं। पिताजी, मेरा जीवन आदर्शों का बना हुआ था। मैं नैतिकता को बहुत बड़ा स्थान दिए हुए था। पाप और पुण्य को मैं वास्तविक समझे हुए था। और मेरी जिन्दगी इन्हीं ख्यालों पर बसी हुई थी। मैं समझता था, विचार के द्वारा हमारी प्रवृत्तियाँ दबाई जा सकती हैं और जो प्रवृत्तियों को दबा नहीं सकता वह सबसे बड़ा पापी है। पर मुझे पता चल गया, प्रवृत्तियाँ पाप नहीं, प्रवृत्तियों का नाश भी नहीं किया जा सकता। और प्रवृत्तियों के कारण किए गए कामों के अनुसार आदमी को मापा भी नहीं जा सकता। कोई सन्देह नहीं, आदमी विचार है। और इसीलिए आदमी के लिए यही एक ही तराजू हो सकता है जिस पर उसे तौला

जा सकता है। प्रवृत्तियाँ उसकी कमजोरी है, फिर भी उनका जोर अत्यधिक है। और इन्हीं के कारण उपजे घोर भावुकता के दवाव में, क्षणिक आवेश में वह जो कुछ भी करता है, उसे अच्छा या बुरा नहीं कहा जा सकता और उनके अनुसार उसकी आदमियत को नहीं तौला जा सकता। आपने भी कुछ किया है, माँ ने भी वासना के क्षणिक आवेश में कुछ किया है, और सेठजी, मेरे पिता ने भी इन्हीं प्रवृत्तियों के वश होकर कुछ किया है। पर आप वासना नहीं। मेरी माँ वासना नहीं, मेरे पिता वासना नहीं। इन सबों की कमजोरी वासना है, कोई शक नहीं। पर इसके कारण उन्हें हम क्यों दोष दें? यह वासना, यह प्रवृत्तियाँ किसी में कम रहती हैं, किसी में अधिक। इन्हें जहाँ तक विचारों से दवाया जा सके वहुत अच्छा है। वल्कि मैं तो समझता हूँ, इन्हें नष्ट करना हरेक का कर्तव्य है। फिर भी अगर ये नष्ट नहीं हो सकें तो इसके लिए किसी को दोष नहीं दिया जा सकता। आदमी को पशु से अलग करनेवाली चीज है उसकी विचारशक्ति। वह आदमी इसलिए है कि वह विचार कर सकता है। और इसी विचारशीलता के अनुसार हर आदमी नापा जा सकता है। उसका असली मापदण्ड यही हो सकता है। मैं जो हूँ सो हूँ, आप जो हैं सो हैं। हममें कोई परिवर्तन नहीं आया। परिवर्तन आया है हमारे ख्यालातों में। हम जिसे जो समझते थे, उससे दूसरी ही वातें आ निकलीं। तो हम अपने इन गलत विचारों को छोड़कर सही पर आने में हिचकें क्यों? दुनिया के धोखे की टट्टी को तोड़ दीजिए, नैतिकता का नाम मिटा दीजिए, अपने ख्यालों को उदार कीजिए, प्रवृत्तियों को पशु का गुण समझ भावुकता से उसे कोई चीज समझने की वात ही छोड़ दीजिए। फिर देखिए, आप असलियत पर पहुँच जाते हैं।

श्यामा—(धीरे से) बहुत बढ़िया भाषण हो रहा है। और कहे जाइए।

(गोपाल बाबू और निशा एक-दूसरे का मुँह ताकते हैं। बिहारी दरवाजे पर आता है, रंग बेढब देख मुँह बनाकर वापस हो जाता है। जाते समय बाहर का दरवाजा धीरे से ओठंगा देता है)।

आखरी बात

जब कोई किसी को तंग करने पर पड़ जाता है तो हर तरह से तंग करता है। इतनी बातें कह गया, फिर भी चैन नहीं, खामख्वाह और कुछ कहने को उतर पड़ा। मगर करूँ क्या? ये मेरे और आपके एक शुभ-चिन्तक की मेहरबानी का फल है।

गलती थोड़ी मेरी भी हुई। मैं उन्हें इस किताब का प्रूफ दिखा रहा था। आपने भौंहे टेढ़ी करके एक सरसरी निगाह डाली और जरा-सी नाक सिकोड़ ली। मुझे खामख्वाह हँसी आ गई। बहुत-सी जहाँ तहाँ की बातों के साथ उन्होंने दया करके एक सुझाव पेश किया।

'इसमें तुमने एक चीज़ की बुरी तरह पर्वाह नहीं की है।'

मेरी उत्सुकता बढ़ी।

आपने कहा—'देखो, तुमने एक डाक्टर की तरह समाज की एक बड़ी समस्या की चीर फाड़ करके रख दिया है, यह देखने की कोशिश नहीं की कि आदमी के भीतर मन नाम की भी कोई चीज़ है। और उस मन के अन्दर तरह तरह के भावों के संघर्ष भी निरन्तर होते रहते हैं।'

नियम के अनुसार मैंने उन्हें धन्यवाद दिया, और फिर चुप रह गया। शायद इसे आप मेरी कमजोरी समझें। लेकिन मैं आपके कान में चुपके से इसका कारण बताता हूँ, उनसे न कहिएगा कृपया, नहीं तो मेरी शामत आ जायगी। महाशय उन लोगों में से हैं जो अपनी बुद्धि (तर्क शक्ति) को हमेशा अपनी बीवियों के पास छोड़कर दोस्त मंडली में पहुँचा करते हैं और जिन्हें अपनी बातें छोड़कर न किसी की बातें समझ में आती हैं और न ठीक ही मालूम होती हैं। फिर मैं चुप न रहता तो करता क्या?

लेकिन इस बहुरंगी दुनियाँ में उनके ही रंग के तो सभी लोग नहीं; कम-से-कम आप पर मुझे विश्वास है। और मैं आपसे उनके सन्देह के उत्तर

में कुछ कहना चाहता हूँ। फिलहाल अभी यही मेरी आखरी बात होगी।

आदमी के मन है और यह मन अत्यंत शक्तिशाली तथा गतिपूर्ण है। और यह मन इतना प्रत्यक्ष है कि बहुत समय इसके संबंध में कुछ नहीं कहकर भी चल सकता है। मैं ये नहीं कहना चाहता कि मन एक खुली पिटारी है जो सबके द्वारा देखा जा सकता है। मेरा मतलब केवल इतना है कि इसके कुछ काम ऐसे हैं जो दिन रात सभी की आँखों के सामने गुजरते रहते हैं। जैसे प्रेम, ईर्ष्या। अगर हर कहानीकार अपनी कहानी कहने के पहले प्रेम और ईर्ष्या का विश्लेषण करता रहे तो वह कलाकार रह चुका।

फिर भी व्याह की समस्या में हमने जो एकाध दलील पेश की है इसमें प्रेम और ईर्ष्या नाम की चीज का जिक्र आना अत्यंत जरूरी था, जिसे मैंने जान-बूझकर छोड़ दिया था। लेकिन इनके संबंध में कुछ कहे बगैर अब चलता नज़र नहीं आता।

प्रेम की परिभाषा देना एक कठिन काम है लेकिन इतना कहा जा सकता है कि प्रेम मन की उन उत्कट इच्छाओं का जमघट है जिसकी अनुभूति सुखद, पदार्थ अपने से भिन्न लिंग का प्राणी और उद्देश्य साधारण तरीके पर यौन-संबंध है। ये तो स्वस्थ प्रेम के तीन पहलू हुए। पर साइको-एनालिस्ट डाक्टर सिगमंड फ्रॉयड के अनुसार इसका हर पहलू बिना दूसरों पर निर्भर किए हुए खुद में बदल सकता है। जैसे प्रेम का चरम उद्देश्य साधारण यौन-संबंध न रहकर कुछ और भी रह सकता है, जैसे प्रिय पात्र को सिर्फ पास पाने ही की इच्छा। अथवा प्रिय-पात्र अपने से भिन्न लिंग का प्राणी न होकर कोई निष्प्राण पदार्थ भी हो सकता है, जैसे पात्र की तस्वीर या मूर्ति। यही हाल अनुभूति का भी है।

और ईर्ष्या इसी प्रेम का दूसरा रूप है। अथवा यों कहिए कि ईर्ष्या प्रेम से अलग कोई चीज ही नहीं। जहाँ प्रेम की संभावना नहीं, वहाँ ईर्ष्या भी नहीं हो सकती। ईर्ष्या वहीं होती है जहाँ प्रेम है। ईर्ष्या के विश्लेषण से हम पाँच चीजें पाते हैं—सन्देह, भय, दुःख, क्रोध और लज्जा।

एक उदाहरण लीजिए—'क' ने शादी की है और इस 'क' और उसकी बीवी के बीच एक दूसरा मर्द आता है 'ख'। 'क', 'क' की बीवी और 'ख' इन तीनों के मिलकर एक त्रिकोण हुआ। 'क' पहले अपनी बीवी पर सन्देह करता है, फिर उसका प्रेम खो देने का भय होता है, या यूं समझिए कि 'ख' के अपनी बीवी पर अधिकार करने का भय होता है, इससे उसके आत्माभिमान पर धक्का लगकर दुःख होता है, फिर क्रोध का आविर्भाव होता है जिसके वशीभूत होकर वह 'ख' की हत्या तक कर सकता है और अन्त में अपने, अपनी बीवी और अपने रकीब के व्यवहारों पर लज्जा आती है।

ईर्ष्या पर यह सीधी-सादी बात कह देने पर अब देखना यह है कि ऐसा क्यों होता है कि कुछ लोग ऐसे हैं जो सबसे पहले अपनी बीवी पर सन्देह करते हैं और अपने प्रतिद्वन्द्वी की जान तक ले लेते हैं और कुछ ऐसे हैं जो अपनी बीवी को शौक से अपने रकीब के साथ सेकण्ड शो सिनेमा भेज देते हैं और कुछ महसूस नहीं करते। शायद इनमें तीसरे भले आदमी को एक मामूली आदमी पुरुषत्वहीन कहने में गर्व अनुभव करेगा। पर बात इतनी सीधी नहीं।

ईर्ष्या एक ऐसी चीज़ है जिसका जन्म बच्चे के जीवन में उस वक्त होता है जब बच्चा दूध पीता ही होता है। बच्चा माँ को अपने लिए चाहता है, क्योंकि माँ उसे दूध पिलाती है, उसकी सबसे बड़ी प्राकृतिक आवश्यकता को पूरी करती है और इसमें बच्चे को सुख मिलता है और बच्चे और माँ के बीच में बाप आता है। जो बच्चे की यह इच्छा कि वह माँ का एकमात्र प्रेमाधिकारी हो पूरी नहीं होने देता। पहली ईर्ष्या बच्चे की होती है बाप पर। साइको-ऐनालिसिस इसे कहता है ईडिपस कम्प्लेक्स (Oedipus Complex)।

पुरुष जब स्त्री को प्रेम करता है तो उसे एकदम से अपने लिए चाहता है। और जब इस स्त्री के किसी दूसरे के साथ जानेका खतरा होता है

बाधा दी जाय या सामाजिक जीवन को नारकीय बना दिया जाय यह मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं। मैं पहले ही कह चुका हूँ, व्याह की वास्तविक आवश्यकता बच्चे का लालन-पालन, तथा उसकी शिक्षा दीक्षा है, प्राणिशास्त्रीय नियम यही चाहते हैं। स्त्री पुरुष का प्रेम-संबंध तो इन्हीं नियमों का वह जोर है जो स्त्री पुरुष के मिलन को संभव करता है, ताकि सृष्टि का काम बाकायदे चलता रहे। तो इस प्रेम के लिए सृष्टि को नष्ट नहीं किया जा सकता।

यह तो हुई तर्क की बातें। पर आपही अपने कलेजे पर हाथ रखकर कहिए, अगर मैं अपनी पुरानी दलील पेश करूँ तो, क्यों ऐसा होता है कि वर्तमान सामाजिक गठन में पुरुष का पर-स्त्री-गमन उतना बड़ा अपराध नहीं समझा जाता, और स्त्री का एक 'अपराध' सारी वैवाहिक-संस्था की जड़ हिला देता है? आप मेरी दलीलों के रास्ते में मनोवैज्ञानिक रोड़े अटकाने की कोशिश कर सकते हैं। मगर क्या स्त्री के मन नहीं होता? या मनोविज्ञान उस वक्त हवा खाने चला जाता है?

हाँ, किशोर और श्यामी के शुभ-विवाह के सुअवसर पर आप चाहें तो अपने पैसों से अपना मुँह मीठा करके उनके लिए आशीर्वादों के तार भेज दे सकते हैं।

किशोर और श्यामी की तरफ से आपको धन्यवाद।

कलकत्ता
७-८-४० }

द्वारका प्रसाद